

रजत जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष्य पर प्रकाशित

सामयिक निबन्ध 2

वैदिक साहित्य

किरीट जोशी



महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रीयवेदविद्याप्रतिष्ठानम् उज्जयिनी

(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय भारत सरकार)

वैदिक साहित्य

सङ्क्षिप्त विहङ्गावलोकन

वेदों की प्राचीनता आलोचना और मतभेद का विषय रही है। भारतीय प्राचीन परम्परानुसार वेदों की रचना के समय का निर्धारण असम्भव है। फिर भी, इतिहासकारों का सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वेद प्राचीनतम ज्ञानपुञ्ज का उपलब्ध आद्य सङ्ग्रह है। एक भारतीय इतिहासकार अविनाशचन्द्र दास के अनुसार वेदों की रचना ईसापूर्व २५० से ७५० शती के बीच किसी समय हुई होगी। लोकमान्य तिलक के अनुसार इसका अनुमानित समय ईसापूर्व ४५ वीं से ५० वीं शती के बीच होगा। यह मत प्रो. हौग, प्रो. लुड्विग् और प्रो. याकोबी की स्थापनाओं से मिलता है। प्रो. व्हिटनी इसके रचनाकाल को ईसापूर्व १५ वीं से २० वीं शती के बीच मानते हैं, प्रो. मैक्सम्यूलर का विश्वास है कि वेद की रचना ईसापूर्व १३ वीं शताब्दी में हुई।

बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार चारों वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद - परमपिता के निःश्वास हैं।

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो

यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।

मनुस्मृति के अनुसार सम्पूर्ण वेद ज्ञान से आलोकित है (सर्वज्ञानमयो हि सः)। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपने आदिस्वरूप में वेद एक ही था, ऋषि व्यास ने इसे चार भागों में विभक्त किया। इसी कारण उन्हें वेदव्यास कहा जाता है। चारों वेद कई प्रकार से मण्डल, अष्टक, वर्ग, सूक्त, अनुवाक, खण्ड, प्रश्न, छन्द इत्यादि विभागों में विभाजित किए गये हैं। वेद के पद्यात्मक और गद्यात्मक रचना का प्रत्येक शब्द गिनकर निश्चित कर लिया गया है। मन्त्रों के समग्र सङ्ग्रह को 'संहिता' कहते हैं। एक मत के अनुसार वेद शब्द मन्त्रों (काव्यात्मक प्रेरणा और अनुभूति की अपरिहार्य अभिव्यञ्जना) के सङ्कलन तथा ब्राह्मण दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। ब्राह्मण तीन भागों में विभक्त है; (१) ब्राह्मण (२) आरण्यक (३) उपनिषद्। ब्राह्मणों में विभिन्न प्रकार के यज्ञों, उनके अनुष्ठानों और विधियों का

विस्तृत वर्णन एवं व्याख्या है। आरण्यकों का गृह्यज्ञान कुछ दीक्षित व्यक्तियों के लिए है और उपनिषदों में वेद में समाहित ज्ञान का प्रतिपादन है। उपनिषदों को वेदान्त भी कहते हैं। बाद में उपनिषदों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ऋषि बादरायण व्यास ने ब्रह्मसूत्र या शारीरकसूत्र की रचना की। उसके उपरान्त महान् महाभारत के एक अंश के रूप में भगवद्गीता की रचना हुई जिसे उपनिषदों का सारतत्त्व माना जाता है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता की समष्टि को 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है।

वैदिकसाहित्य में मुख्यरूप से मन्त्रसंहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों का समावेश है। मन्त्रसंहिता को समझने के लिए ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् का अध्ययन अत्यावश्यक माना जाता है और ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता का अध्ययन भी आवश्यक समझा जाता है। वैदिकसाहित्य में वे छह अन्य रचनायें भी सम्मिलित हैं जिन्हें वेद को समझने में सहायक माना जाता है। उन्हें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष के नाम से जाना जाता है। इनमें से प्रत्येक को वेदाङ्ग कहा जाता है।

वैदिक यज्ञों के कर्मकाण्ड से सम्बन्धित वेदाङ्ग को कल्प कहते हैं। कल्प वेदाङ्ग सूत्रों में है, इसलिए सङ्क्षिप्तता इनकी विशेषता है। समस्त कल्प वेदाङ्ग और उसका साहित्य त्रिस्तरीय है, इसमें श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र सम्मिलित हैं। प्रत्येक वेद के लिए अलग-अलग प्रकार के श्रौत, गृह्य और धर्मसूत्र हैं। शाङ्खायन, आश्वलायन, आपस्तम्ब, बौधायन और कात्यायन प्रसिद्ध श्रौतसूत्र हैं। गृह्यसूत्रों में शाङ्खायन गोभिल, आपस्तम्ब, बौधायन, काठक, पारस्कर और कौशिक आदि शामिल हैं। धर्मसूत्रों में गौतम, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन और वसिष्ठ धर्मसूत्रों की गणना की जाती है।

कल्पसूत्रों की इन तीन श्रेणियों के अतिरिक्त शुल्बसूत्र नामक एक चौथी श्रेणी भी है जिसे प्राचीन ज्यामितिशास्त्र का उद्गम माना जाता है। आपस्तम्ब, बौधायन और कात्यायन ये तीन प्रसिद्ध शुल्बसूत्र हैं। कल्प वेदाङ्ग की तरह अन्य वेदाङ्गों का भी सहायक साहित्य है। यह सब और अन्य अधिक विषय मिलकर विशाल वैदिक साहित्य का निर्माण करते हैं। इतिहास, पुराण और वैदिकदर्शन के सम्प्रदायों को भी वैदिक साहित्य का अङ्ग माना जाता है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि वैदिकसाहित्य का बीजतत्त्व मन्त्रसंहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं।

वेदों में ऋग्वेद का स्थान अप्रतिम है। इसमें १० मण्डल और १०१७ सूक्त हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों की सम्पूर्ण सङ्ख्या १०,५८० है। ऋग्वेद के शब्दों और अक्षरों तक को गिन लिया गया है। इसमें शब्दों की सङ्ख्या १,५३,८२६ और अक्षरों की सङ्ख्या ४,३२,००० है। मन्त्रों को प्राप्त करने वाले कुछ विशिष्ट द्रष्टा ऋषियों में वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, भारद्वाज, अत्रि और मधुच्छन्दस् प्रमुख हैं। एक अकेले ऋषि या उसके परिवार के ऋषियों के स्तोत्रों के लिए छह मण्डल निर्धारित किए गये हैं।

इस प्रकार द्वितीय मण्डल मुख्यतया ऋषि गृत्समद के सूक्तों का सङ्कलन है, इसी तरह तृतीय और सप्तम मण्डल क्रमशः महर्षि विश्वामित्र और वसिष्ठ के, चतुर्थ वामदेव और षष्ठ भारद्वाज के स्तोत्रों के सङ्ग्रह हैं। पञ्चम मण्डल अत्रिपरिवार के स्तोत्रों से भरा हुआ है। प्रत्येक मण्डल में अग्नि को सम्बोधित सूक्त पहले सङ्कलित हैं, तत्पश्चात् वे सूक्त हैं जिनका देवता इन्द्र है; अन्य देवों बृहस्पति, सूर्य, ऋषभ, उषा इत्यादि के स्तुतिमूलक सूक्त मण्डल के अन्त में रखे गये हैं। सम्पूर्ण नवाँ मण्डल अकेले एक देवता सोम को समर्पित है। प्रथम, अष्टम और दशम मण्डलों में विभिन्न ऋषियों के सूक्त सङ्कलित हैं; किन्तु प्रत्येक ऋषि के स्तोत्र पहले अग्नि, फिर इन्द्र तदुपरान्त अन्य देवों के क्रम से रखे गये हैं।

वैदिकमन्त्रों की इस व्यवस्था में हम विचारों के विकास का एक निश्चित सिद्धान्त भी देख सकते हैं। प्रारम्भिक मण्डल इस प्रकार परिकल्पित किया गया लगता है कि वेद का सामान्य विचार अपने सभी तत्त्वों के साथ स्थापित प्रतीकों की ओट में कुछ निश्चित सङ्ख्या के ऋषियों की वाणी में स्वयं को उचित ढंग से उजागर कर सकें, प्रायः सभी ऐसे ऋषि उच्चकोटि के चिन्तक, पवित्र गायक हैं तथा कुछ के नाम तो वैदिकपरम्परा में अति विख्यात हैं। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि दसवें या अन्तिम मण्डल में रचनाकारों की विविधता पूर्वपेक्षा अधिक है, यह मण्डल वैदिक विचारों के विकासक्रम में अन्तिम और कुछ सूक्तों की भाषा की दृष्टि से अति अर्वाचीन है।

यहीं हमको पुरुषसूक्त और सृष्टि से सम्बन्धित उदात्त सूक्त मिलता है। यहीं पर आधुनिक विद्वान् समझ लेते हैं कि उन्होंने वेदान्तिकदर्शन ब्रह्मवाद के मूल

स्रोत की खोज कर ली है। यज्ञ वैदिक परम्परा और ज्ञान का प्रतीक और प्रधान अनुष्ठान है। यज्ञ आन्तरिक उच्च शक्तियों, देवों और परमतत्त्व के प्रति आत्मनिवेदन, प्रणति और समर्पण का प्रतीक है। इस समर्पण की परिणति विस्तृत कर्मकाण्ड, हवन सामग्री के सञ्चयन, यज्ञाग्नि के प्रज्वलन और अग्नि में विविध द्रव्यों घृत, शस्य और अन्य वस्तुओं की आहुति के रूप में होती है। यह समस्त प्रक्रिया उपयुक्त मन्त्रों और स्तोत्रों के शुद्ध उच्चारण, निर्धारित विधि से गायन, उचित ढंग से हस्तसञ्चालन तथा अन्य सङ्केतों या मुद्राओं के साथ सम्पन्न होती है। वैदिक रहस्यविद्या में यह धारणा समाहित है कि मानवजीवन एक यात्रा है। इसे यज्ञ की यात्रा माना जाता है जिसे अत्यधिक सावधानी और आत्मसंयमपूर्वक अनुशासित ढंग से सम्पादित किया जाता है ताकि इस यात्रा की बाधाएँ दूर हो सकें और सृष्टि के विविध स्तरों पर महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकें। शब्द, प्रत्यय और यथार्थ के बीच एक घनिष्ठ सम्बन्ध की कल्पना की गई थी और यह माना जाता था कि शब्द विचारों का द्वार और विचार यथार्थ की अनुभूति का द्वार खोलते हैं। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर यज्ञ के कर्मकाण्ड को पूर्ण विस्तार और शुद्धता के साथ विकसित किया जाता था तथा उपासना के अतिरिक्त यज्ञ के अनुष्ठान पर अधिक ध्यान दिया जाता था। यज्ञ की सम्पूर्ण प्रक्रिया को सम्पन्न करने वाले पुरोहित को 'अध्वर्यु' और अध्वर्यु द्वारा प्रयुक्त मन्त्रों को यजुर्वेद कहा जाता था। इसीलिए यजुर्वेद को अध्वर्युवेद भी कहते हैं। यजुर्वेद की रचना मूलतः गद्य में हुई है।

मत्स्यपुराण के अनुसार प्रारम्भ में यजुर्वेद ही एकमात्र वेद था। वायुपुराण और विष्णुपुराण में यही विचार दुहराया गया है। वेदव्यास ने प्रतीकात्मक यज्ञ की प्रक्रिया को ध्यान में रखकर चार संहिताओं में इसे व्यवस्थित किया और उन्होंने पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमन्तु को अथर्ववेद सौंपा। कालान्तर में उन लोगों ने अपने-अपने शिष्यों को वह ज्ञान दिया, तदुपरान्त मौखिक-परम्परा द्वारा गुरु से शिष्य तक ज्ञानसञ्चरण की परम्परा विकसित हुई। इस प्रकार वेदों के विभिन्न पाठों या शाखाओं का विकास हुआ। इस प्रकार वेदों के विभिन्न पाठों या शाखाओं का विकास हुआ। भागवत और अन्य पुराणों में वेदों की विविध शाखाओं का विस्तृत विवरण मिलता है। महाभारत के

शान्तिपर्व (३८२ अध्याय) में भी हमें इसी प्रकार का विवरण उपलब्ध होता है। चरणव्यूह में भी हमें वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में व्यवस्थित सूचना प्राप्त होती है। चरणव्यूह की तीन पुस्तकें उल्लेखनीय हैं जिनकी रचना का श्रेय शौनक, कात्यायन और व्यास को दिया जाता है।

शाखाओं की पूर्ण सङ्ख्या ११३१ मानी जाती है, किन्तु वर्तमान में केवल दस शाखायें जीवित बची हैं। जहाँ तक ऋग्वेद का सम्बन्ध है, उसकी कभी २१ शाखायें थीं, उनमें से अब केवल एक शाकल शाखा ही बची है। ऐसा कहा जाता है कि उत्तरप्रदेश और गुजरात के कतिपय वेदपाठियों को शाङ्खायन शाखा आज भी ज्ञात है किन्तु यह निश्चित नहीं है। जहाँ तक यजुर्वेद का सम्बन्ध है, पतञ्जलि ने अपने व्याकरणमहाभाष्य में कहा है कि इसकी १०१ शाखायें थीं, लेकिन आज केवल पाँच शाखायें विद्यमान हैं। वास्तव में यजुर्वेद मोटे तौर पर शुक्लयजुर्वेद और कृष्णयजुर्वेद नामक दो भागों में विभक्त है। शुक्लयजुर्वेद को वाजसनेयी भी कहते हैं। वाजसनेयीसंहिता में ३० अध्याय, ३०३ अनुवाक, १९७५ कण्डिका, २१७२७ शब्द और ८८८७५ अक्षर हैं। शुक्ल या वाजसनेयी यजुर्वेद की दो वर्तमान शाखायें काण्व और माध्यन्दिन हैं। कृष्ण-यजुर्वेद की पाँच शाखायें आपस्तम्ब (तैत्तिरीय), हिरण्यकेशी (कपिष्ठल), कठ, काठक और कालाप या मैत्रायणी वर्तमान हैं। मैत्रायणीसंहिता में चार काण्ड हैं जिन्हें प्रपाठकों में विभक्त किया गया है। इस संहिता में ३१४४ मन्त्र हैं, जिनमें से १७०१ ऋग्वेद के ऋक् हैं। इस संहिता में चातुर्मास्य, वाजपेय, अश्वमेध, राजसूय, सौत्रामणि इत्यादि महत्त्वपूर्ण यज्ञों के मन्त्र और विधिविधान हैं, तैत्तिरीयसंहिता में सात काण्ड, ४४ प्रपाठक और ६३१ अनुवाक हैं। इस संहिता में राजसूययज्ञ, यजमान और पुरोडाश आदि का वर्णन है।

यज्ञ में अध्वर्यु के अलावा उद्गाता भी होता है जो कुछ विशिष्ट मन्त्रों का गायन करता है। उद्गाता के लिए सङ्कलित मन्त्रों को सामवेद कहा जाता है। चरणव्यूह और पतञ्जलि के महाभाष्य में यह सूचित किया गया है कि सामवेद की एक हजार शाखायें थीं। सामवेद प्रकृत्या सङ्गीतात्मक है और इसमें केवल वे ही ऋक् सम्मिलित हैं जो शुद्ध ढंग से गाये जा सकें। इसमें १५४९ ऋक् हैं जिनमें

केवल ७५ मन्त्र ऋग्वेद से स्वतन्त्र हैं। वर्तमान में सामवेद की केवल तीन शाखायें कौथुम, राणायनीय और जैमिनीय विद्यमान हैं।

कुछ समुचित शब्दों या स्तोत्रों जैसे हा, यू, हो, आई, ओ, ओह, आड, हा इत्यादि को जोड़कर ऋचाओं को सामवेद के सङ्गीत में परिणत किया गया है।

ऋग्वेद से सम्बद्ध 'होता', यजुर्वेद से सम्बद्ध 'अध्वर्यु', सामवेद से सम्बद्ध 'उद्गाता' के अतिरिक्त एक चौथा पुरोहित भी होता है जिसे ब्रह्मा कहा जाता है जो अथर्ववेद के साथ ही चारों वेदों का विशेषज्ञ माना जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को सामूहिक-रूप से वेदत्रयी कहा जाता है। अथर्ववेद की गणना वेदत्रयी में नहीं की जाती, यद्यपि वैदिक कर्मकाण्ड में इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद को अथर्वाङ्गिरस भी कहा जाता है। अथर्ववेद में दो प्रकार के मन्त्र हैं, पहले वे मन्त्र जो बीमारियों का उपचार करने, हिंसक पशुओं, पिशाचों और शत्रुओं का विनाश करने से सम्बन्धित हैं, दूसरे वे जो परिवार और पुर में शान्तिस्थापित करने, स्वास्थ्य, सम्पदा, सुरक्षा और शत्रुओं को वशीभूत करने से सम्बन्धित हैं। आयुर्वेद का प्रारम्भ भी अथर्ववेद में पाया जाता है।

अथर्ववेद की संहिता में २० काण्ड हैं जिनमें ३४ प्रपाठक, १११ अनुवाक, ७३९ सूक्त और ५८४९ मन्त्र हैं। इनमें से करीब १२०० मन्त्र ऋग्वेद में भी मिलते हैं। अथर्ववेद का छठा भाग गद्य में और शेष पद्य में है।

पतञ्जलि ने सङ्केत किया है कि अथर्ववेद की ९ शाखायें थीं किन्तु आजकल केवल पैप्पलाद और शौनक नामक दो शाखायें ही उपलब्ध हैं।

चारों वेदों और उनकी अनगिनत शाखाओं के अतिरिक्त ब्राह्मणों का विस्तृत साहित्य है। ब्राह्मणों के उपाङ्ग, जो अंशतः पद्य में हैं, आरण्यक कहे जाते हैं। इन्हें इसलिए भी आरण्यक कहा जाता है क्योंकि इनके अध्ययन की परम्परा अरण्य में थी। कुछ उपनिषद् भी आरण्यकों में गिने जाते हैं, इसलिए उपनिषदों और आरण्यकों के बीच निश्चित सीमारेखा खींचना प्रायः असम्भव है। ब्राह्मणों में भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों का विस्तृत विवरण और उनके कर्मकाण्ड का विधि विधान दिया गया है। ब्राह्मणों में इतिहास, अनुश्रुति, उपाख्यान और व्यक्तियों से सम्बन्धित कहानियों का सङ्ग्रह समाविष्ट है। ब्राह्मण का एक पर्यायवाची शब्द प्रवचन भी है। प्रवचन का अर्थ प्रतिपादन है। इसलिए ब्राह्मणों को वेद के विधि

अङ्गों का प्रतिपादन करने वाला माना जाता है। ऐसा लगता है कि ब्राह्मण साहित्य बड़ा विशाल रहा होगा किन्तु उसमें से बहुत ब्राह्मण लुप्त हो गये हैं।

वेदों की प्रत्येक शाखा का अलग ब्राह्मण है। वेदों के विभिन्न शाखाओं के साथ उनके ब्राह्मणों का भी निर्देश किया गया है। ऋग्वेद की शाकलशाखा का ब्राह्मण ऐतरेय है, इसकी वास्कलशाखा से कौषीतकीब्राह्मण सम्बद्ध है। शुक्लयजुर्वेद से शतपथब्राह्मण और तैत्तिरीय तथा काठकब्राह्मण कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित हैं। जैमिनीय, आर्षेय, मन्त्र, सामविधान, देवताध्याय वंश, पञ्चविंश, षड्विंश के सहित सामवेद के अनेक ब्राह्मण हैं। गोपथब्राह्मण अथर्ववेद से सम्बन्धित हैं। लुप्त ब्राह्मणों में पैंगायनी, आश्वलायन, गालव, चरक, श्वेताश्वतर, काठक, मैत्रायणी, जाबालक, खाण्डिकेय, रौरकी, शात्यायन, तवलकार, आरुणेय, पाराशर और कापेय ब्राह्मण महत्त्वपूर्ण हैं।

अनेक प्राचीन विद्वानों के अनुसार चारों वेदों के मन्त्र और उनकी व्याख्या में लिखे गये ब्राह्मणों को मिलाकर वेद कहा जाता है। वेद जैसा ही सम्मान ब्राह्मणों का बराबर रहा है। वेदों के समान ही ब्राह्मणों को मानते हुए कर्मकाण्ड सम्पन्न किए जाते थे, किन्तु १९वीं शती में महर्षि दयानन्द ने अपना मत व्यक्त किया कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं। उनके अनुसार वेद प्रकट हुए थे जबकि ब्राह्मण वेद की तरह प्रकट नहीं हुए, यद्यपि वे ऋषियों द्वारा अभिव्यक्त हैं। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को स्थापित करने के लिए अनेक तर्क दिए हैं जो निष्पक्षतापूर्वक विचारणीय हैं। जो भी हो, ऐसा कहा जाता है कि ब्राह्मणों की भाषा वेदमन्त्रों की भाषा नहीं है। कुछ लोगों का विश्वास है कि ब्राह्मण वेदों का भाष्य है और वे प्रवचन की भाषा में व्यञ्जित किए गये हैं। इसलिए वे वैदिक तो हैं किन्तु स्वयं वेद नहीं हैं। फिर भी इस बात में कोई मतभेद नहीं है कि ब्राह्मण वेद की व्याख्या या टीका हैं इसलिए जहाँ तक प्रामाणिकता का प्रश्न है वेदों का वर्चस्व स्वयंसिद्ध है।

इसमें शक नहीं कि वैदिककाल में ब्राह्मण अन्य वैदिकसाहित्य की तुलना में वेदों के सर्वाधिक निकट थे। यह सर्वविदित है कि ब्राह्मण कर्मकाण्ड को महत्त्व देते थे, ज्ञानकाण्ड को नहीं। जहाँ तक ज्ञानकाण्ड का सम्बन्ध है उसके लिए हमारे पास आरण्यकों और उपनिषदों का विशाल साहित्य है। आरण्यकों और

उपनिषदों को सामूहिकरूप से वेदान्त कहा जाता है क्योंकि ये वैदिकसाहित्य के मौलिक तत्त्वचिन्तन के अन्तिम छोर हैं।

यज्ञों की गुह्य व्याख्या, उनका कर्मकाण्ड और वर्णाश्रम व्यवस्था से सम्बन्धित आचार का आन्तरिक अभिप्राय ही आरण्यकों का मुख्य प्रतिपाद्य है। ऐतरेय और कौषीतकी आरण्यक ऋग्वेद से, तैत्तिरीय और शाङ्खायन आरण्यक कृष्णयजुर्वेद से, बृहदारण्यक शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है। तलवकार आरण्यक सामवेद की जैमिनीय शाखा से सम्बन्धित है, वास्तव में यह आरण्यक जैमिनीयब्राह्मणोपनिषद् है। इसमें आरण्यक और उपनिषद् दोनों समाविष्ट हैं।

सबसे प्रसिद्ध आरण्यक ऋग्वेद का ऐतरेय आरण्यक है। इसमें १८ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय कई खण्डों में विभक्त है। जैसा पहले कहा गया है, आरण्यक भिन्न-भिन्न यज्ञों, उनके अनुशीलन एवम् अनुष्ठान का रहस्यात्मक विवेचन करते हैं।

वेद का आध्यात्मिक अर्थ मुख्यतः उपनिषदों में पाया जाता है। उपनिषद् का वास्तविक अर्थ है वह गुह्यशिक्षा जो अन्तिम सत्य में प्रविष्ट होती है। यह गुह्यशिक्षा सामान्यतया तब सञ्चरित और गृहीत होती है जब शिष्य गुरु के समीप बैठता है और गुरु और शिष्य की सञ्चेतना में ऐसी झड़कत होती है कि मौन रहते हुए भी गुह्यसत्य का सञ्चरण और ग्रहण हो सकता है। उपनिषदों में ने दस ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। शङ्कराचार्य ने अपने भाष्य में पाँच अन्य उपनिषदों का भी उल्लेख किया है और परमसत्य की आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए उन्हें भी उच्च स्थान दिया है। उनके नाम हैं श्वेताश्वतर, महानारायण, मैत्रायणी, कौषीतकी और नृसिंहतापनी, मुक्तोपनिषद् में कहा गया है कि उपनिषदों की कुल संख्या १०८ है और वे चारों वेदों से इस रूप में निष्पन्न हैं। (१) ऋग्वेद से १०, (२) शुक्लयजुर्वेद से १९, (३) कृष्णयजुर्वेद से ३२, (४) सामवेद से १६ और (५) अथर्ववेद से ३१ उपनिषद्। मुक्तोपनिषद् यह भी बताता है कि ब्रह्म या चरम सत्य की अनुभूति की प्रक्रिया ब्रह्मजिज्ञासा या ब्रह्म को जानने की उत्कण्ठा से प्रारम्भ होकर उपनिषदों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन तक अनवरत चलती रहती है।

ईशा, केन, कठ, मुण्डक, श्वेताश्वतर और महानारायण काव्यात्मक रचनायें हैं और इनमें उत्तम साहित्यिक गुण हैं। अथर्ववेद के अनेक उपनिषद् हैं, उनमें से कुछ तो अवैदिक भी हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध पुराण और तन्त्र से है। यदि समस्त उपनिषद्-साहित्य की गणना की जाय तो उनकी सङ्ख्या कम से कम २५० होगी।

निम्नाङ्कित तालिका द्वारा महत्त्वपूर्ण उपनिषदों और वेदों के साथ उनके सम्बन्धों का वर्णन सङ्क्षेप में किया जा सकता है।

ऐतरेय, माण्डूक्य और कौषीतकी का सम्बन्ध ऋग्वेद से है,
तैत्तिरीय, कठ और श्वेताश्वतर का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद से है,
बृहदारण्यक और ईशा का सम्बन्ध शुक्लयजुर्वेद से है,
केन और छान्दोग्य का सम्बन्ध सामवेद से है, और
प्रश्न तथा मुण्डक का सम्बन्ध अथर्ववेद से है।

इस तथ्य के बावजूद कि भाषा और प्रतीकों की दृष्टि से उपनिषद् वेदों से उतने विप्रकृष्ट नहीं हैं फिर भी उनको समझना बड़ा कठिन है। उपनिषदों को शिक्षा का नहीं तत्त्वज्ञान के आलोक का वादन मानना चाहिए। वे ऐसे जिज्ञासुओं के लिए रचे गये थे जिनका वैदिक विचारों और वेदान्तिक ऋषियों से सामान्य-रूप में पूर्व परिचय था और उन सत्त्यों का भी जिनको ध्यान में रखकर उपनिषदों की रचना हुई थी उन्हें व्यक्तिगत अनुभव था। यही कारण है कि वे उन विचारों और उनमें अन्तर्निहित सहायक विचारों को अपनी शैली में द्रुतगति से द्योतित कर सके थे। प्रायः मूलपाठ में निहित अनेक विचारों से अकेला एक शब्द या वाक्य अर्थगर्भित रहता है किन्तु उसे कहीं भी स्पष्टरूप से प्रकट नहीं करता। निष्कर्ष को प्रतिपादित करने वाला तर्क प्रायः शब्दों द्वारा सङ्केतित तो होता है, किन्तु स्पष्ट तथा बुद्धि को प्रेषित नहीं होता। पाठक या श्रोता से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने प्रातिभज्ञान के अनुभव से प्रमाणित और पुष्ट करता हुआ प्रकाश की ओर बढ़ता जाय न कि तर्कबुद्धि के निर्णयों के समक्ष अपने विचारों को समर्पित कर दे। फलतः उपनिषदों को ठीक से समझने के लिए पर्याप्त धैर्य, शमगुण और मनोयोग की आवश्यकता है। इतना होने पर भी उपनिषदों के गूढ़ अर्थ में प्रवेश कठिन ही है।

उपनिषदों के अनेक भाष्यकार रहे हैं और मध्ययुगों में उपनिषदों के मूल दार्शनिक-सिद्धान्तों को लेकर तीव्र मतभेद रहे हैं। इससे उपनिषदों की व्याख्या के कम से कम पाँच प्रमुख निकाय प्रचलित हुए। वे हैं - अद्वैतवाद या शङ्कराचार्य का एकब्रह्मवाद, विशिष्टाद्वैतवाद या रामानुजाचार्य का विशिष्ट एकब्रह्मवाद, शुद्धाद्वैतवाद या वल्लभाचार्य का शुद्ध एकब्रह्मवाद, द्वैताद्वैतवाद या निम्बार्काचार्य का द्वैत-अद्वैतवाद और द्वैतवाद या मध्वाचार्य का द्विसत्तावाद। इन महान् आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखे हैं। ब्रह्मसूत्र बादरायण (व्यास ऋषि) द्वारा रचित हैं और उसमें उपनिषदों का रहस्य सूत्ररूप में प्रतिपादित किया गया है। इन आचार्यों के भाष्यों पर उनके शिष्यों ने टीकायें की हैं। इस तरह टीकाओं पर टीकायें होती रही हैं। भगवद्गीता को भी औपनिषदिक शिक्षा के सारतत्त्वों का व्यवस्थित प्रतिपादन माना जाता है। विभिन्न आचार्यों द्वारा भगवद्गीता की भिन्न-भिन्न व्याख्यायें की गई हैं। इस तरह भगवद्गीता पर भी अनेक टीकायें उपलब्ध हैं। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर किया जाने वाला टीका साहित्य हमारे समय में भी लगातार विकसित हो रहा है।

व्यापक अर्थ में वैदिकसाहित्य में वेदाङ्ग भी सम्मिलित है। वेदाङ्ग-संहिता का विकास उपनिषदों से पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। मुण्डक उपनिषद् निम्न छह वेदाङ्गों का उल्लेख करती है, जैसे कि (१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छन्द और (६) ज्योतिष।

ध्वनि, वर्ण, उच्चारण और इन आधारभूत तत्त्वों के पठनपाठन का सम्बन्ध शिक्षावेदाङ्ग से है। प्रत्येक वेद में कुछ अक्षरों का विशिष्ट ढंग से उच्चारण किया जाता है और प्रत्येक के सस्वर पाठ की पद्धति और गति है। शिक्षासङ्ग्रह नामक पुस्तक में ३२ प्रकार के विशिष्ट शिक्षाग्रन्थों का सङ्ग्रह है। ये पद्धतियाँ चारों वेदों की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित हैं। शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रसिद्ध पाणिनीयशिक्षा है। याज्ञवल्क्यशिक्षा दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। वासिष्ठीशिक्षा में ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों की विभिन्नता का विस्तृत विवरण है। याज्ञवल्क्य और वासिष्ठी शिक्षायें वाजसनेयीसंहिता से सम्बन्धित हैं। शिक्षा की अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं काव्यायनीशिक्षा, पाराशरीशिक्षा, माध्यन्दिनीशिक्षा, केशवीशिक्षा और माण्डुकी-शिक्षा। नारदीयशिक्षा, जो सामवेद से सम्बन्धित है, से

विभिन्न ध्वनियों के रहस्य का ज्ञान उपलब्ध होता है। एक वेदाङ्ग तथा एक विज्ञान के रूप में शिक्षा का विकास प्राचीन भारत में उच्चारण सम्बन्धी व्यापक अनुसन्धान की गम्भीरता का द्योतक है। इसी वेदाङ्ग के चलते प्राचीन काल से लेकर आज तक वेदोच्चारण की पद्धति अविकल रह सकी है। एक शाखा का समस्त देश में एक ही ढंग से सस्वर पाठ होता है। एक शाखा के वेदपाठी चाहे वे भारत के किसी प्रान्त के हों, एक ही स्वरशैली, गति, यति, शक्ति तथा हस्तसञ्चालन की एक जैसी मुद्रा से मन्त्रोच्चार करते हैं। समस्त देश में उच्चारण की वेदाङ्गपद्धति को इतनी एकरूपता प्राप्त हो सकी और इसकी परम्परा इतनी सुदृढ़ हो सकी क्योंकि शिक्षा के सम्बन्ध में एक सीमा तक पूर्णता प्राप्त कर ली गई थी।

वैदिकधर्म या विहित क्रियाओं तथा यज्ञों पर आधारित है। इसलिए समयानुसार इस कर्मकाण्ड की व्यौरेवार जानकारी आवश्यक हुई, इसीसे विशाल कल्पसूत्रसाहित्य का उद्भव हुआ। कल्प का अर्थ है वह जो यज्ञों, अन्य शास्त्रोक्त कर्मों तथा धार्मिक विधि-विधानों में करणीय हो। कर्मकाण्ड त्रिस्तरीय है, श्रौतसूत्र, जो श्रुति या वेद विहित यज्ञों से सम्बन्धित है, गृह्यसूत्र, जो गृहस्थ-जीवन की विविध धार्मिक क्रियाओं और जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनेक महत्त्वपूर्ण अवसरों पर होने वाले संस्कारों से सम्बन्धित है, धर्मसूत्र जो सामाजिक, राजनीतिक और अन्य हितप्रद कर्तव्यों से सम्बन्धित है। समूचा कल्पसाहित्य सूत्र-साहित्य है क्योंकि यह सङ्क्षिप्त वाक्यों में रचा गया है। कल्पसूत्रों की एक चौथी श्रेणी भी है जिसे शुल्बसूत्र कहते हैं और जो ज्यामिति, यज्ञवेदीसंरचना, यज्ञपात्र और अन्य वास्तुकर्मों से सम्बन्धित है।

प्रत्येक वेद के अनुरूप अनेक श्रौतसूत्र थे। शाङ्खायन और आश्वलायन ऋग्वेद से सम्बन्धित हैं, आर्षेय, बौधायन, भारद्वाज और वैखानस कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयशाखा से, मानवश्रौतसूत्र कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणीशाखा से (इस सूत्र को मनुस्मृति का आधार माना जाता है) कात्यायनश्रौतसूत्र शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित है और वैतानसूत्र अथर्ववेद के साथ ही गोपथब्राह्मण और यजुर्वेद के कात्यायनश्रौतसूत्र से भी सम्बन्धित है।

यज्ञ के पुरोहित को चारों वेदों से सम्बन्धित श्रौतसूत्रों का सही ज्ञान होना आवश्यक है। कुछ यज्ञों में सोलह पुरोहितों तक की आवश्यकता होती है। ९८

प्रकार के यज्ञकर्म हैं जिनमें सात हविर्यज्ञ और सात सोमयज्ञ हैं। हविर्यज्ञ में दर्शपूर्णमास्य और चातुर्मास्य यज्ञ महत्त्वपूर्ण हैं। सोमयज्ञों में अग्निष्टोम अनुष्ठान महत्त्वपूर्ण है। सोमयज्ञ तीन प्रकार के हैं। एकाह अर्थात् एक दिन का अनुष्ठान, द्वादशाह अर्थात् १२ दिन का अनुष्ठान और अनेकाह अर्थात् अनेक दिनों का अनुष्ठान। सोमयज्ञ का अग्निचयन पूरे वर्ष भर चलता रहता है।

श्रौतसूत्रों के पश्चात् गृह्य आते हैं, ये भी भिन्न-भिन्न वेदों से सम्बन्धित हैं। शाङ्खायन- गृह्यसूत्र, शाम्भव्यगृह्यसूत्र और आश्वलायनगृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बन्धित हैं, गोभिल और खादिर सामवेद के गृह्यसूत्र हैं, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन, मानव, काठक, भारद्वाज और वैखानस कृष्णयजुर्वेद के गृह्यसूत्र हैं। जबकि पारस्कर शुक्लयजुर्वेद का और कौशिक अथर्ववेद का गृह्यसूत्र है।

श्रौतसूत्रों में वर्णित यज्ञों के लिए तीन भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञकुण्डों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें गार्हपत्य, आहवनीय और दाक्षिणात्य कहते हैं, गृह्यसूत्रों द्वारा निर्दिष्ट देवयज्ञ के लिए केवल एक अग्निकुण्ड की आवश्यकता होती है।

धर्मसूत्रों में गौतमधर्मसूत्र सामवेद से सम्बन्धित है और आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, बौधायन कृष्णयजुर्वेद से, लेकिन गौतम, वसिष्ठ, मानव, वैखानस और विष्णुधर्मसूत्र वेद की किसी निश्चित शाखा से सम्बन्धित नहीं हैं।

भारतीय साहित्य में धर्म शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। मनुस्मृति के अनुसार धर्म वह है जो वेद और स्मृति में निहित है, जो महापुरुषों द्वारा आचरित है और जो जीव की आत्मा के लिए श्रेयस्कर है, संस्कृतसाहित्य में धर्मशास्त्र शब्द का सम्बन्ध व्यापकरूप से मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति से लेकर जो भी वेदसम्मत हैं उन सभी स्मृतियों से है। धर्मसाहित्य का सूत्रपात गौतम, बौधायन और आपस्तम्ब के धर्मसूत्रों, जो ६ वीं से ४ वीं शताब्दी ईसापूर्व के हैं, से होता है। समय के साथ-साथ धर्मसाहित्य का विस्तृत विकास हुआ और करीब १०० स्मृतियाँ लिखी गईं इनमें से कुछ तो गद्य में हैं, अधिकांश पद्यबद्ध हैं। स्मृतिकारों में मनु अग्रगण्य हैं और इनकी मनुस्मृति पर बड़ी सङ्ख्या में टीकायें

लिखी गई हैं। इन टीकाओं में मेधातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूकभट्ट, नारायण, राघवानन्द, नन्दन और रामचन्द्र की टीकायें प्रमुख हैं।

कर्मयोग के महान् ग्रन्थ भगवद्गीता में भी धर्म विषयक चर्चा कुछ विस्तार से की गई है, इसमें कर्म, ज्ञान और भक्ति का प्राचीन समन्वय उपलब्ध होता है। भगवद्गीता धर्म के उस विकासशील स्वरूप को मान्यता देती है जिसके द्वारा व्यक्ति और समाज को क्रमिक विकास और प्रगतिपूर्वक पूर्णता की ओर अग्रसर होने में सहायता मिलती है। विकास की इस प्रक्रिया में स्वधर्म और स्वकर्म की महत्त्वपूर्ण अवधारणायें भी हैं। गीता के चरमोत्कर्ष वाले अध्याय (18वें) में हम भगवान् कृष्ण को अर्जुन से कहते हुए पाते हैं कि सब धर्मों को छोड़कर एक परमप्रभु की ही शरण में आवो। गीता की विपुल और जटिल शिक्षा वेदों की शिक्षा में सन्निहित प्रतीत होती है जो कर्म, ज्ञान और भक्ति के आद्य संश्लेषण हैं। वेद की प्रधान अवधारणा जिससे उत्तरकाल में धर्म की अवधारणा का विकास हुआ, ऋत है। ऋत और सत्य परस्पर व्यतिहारित हैं लेकिन इन दोनों में निश्चित भेद भी है, सत्य को हम यथार्थ मान सकते हैं पर ऋत का भाव उचित या उपयुक्त है। यथार्थ में वेदों द्वारा परिभाषित पूर्णता का सूत्र सत्य, ऋत और बृहत् है। सत्य का मौलिक परिपार्थ्व बृहत् या व्यापक है। जहाँ सीमा है वहाँ पक्षपात है और वहाँ अपूर्णता तथा सत्य का विकृत रूप है। केवल असीम विस्तार के सन्दर्भ में ही सत्य की प्रतीति, प्राप्ति और बोध हो सकती है, और जब सत्य का बोध हो जाये तभी उचित कर्म का विकास हो सकता है। यही सत्य, ऋत और बृहत् की त्रयी की सार्थकता है।

ऋत के इस मौलिक अर्थ पर यदि हम स्थिर रहें तो भारतीय-साहित्य में धर्म के समूचे विकास की अवधारणा को समुचित ढंग से समझ सकते हैं। धर्म वह है जो धारण करता है, जो हमें संसक्ति देता है और विकास तथा प्रगतिपथ पर दृढ़ रखता है। इस सन्दर्भ में न तो धर्म स्थिर हो सकता है और न सभी मनुष्यों और मानवजीवन के सभी स्तरों के लिए उसकी एकरूपता हो सकती है। जो एक तामसिक के लिए ठीक है वही एक राजसिक के लिए ठीक नहीं हो सकता और जो एक राजसिक के लिए ठीक हो, वही एक सात्त्विक के लिए ठीक नहीं हो सकता। चूँकि सत्त्व चरम अवस्था नहीं है इसलिए जो सात्त्विक के लिए ठीक है वह उस

व्यक्ति के लिए अनिवार्य नहीं हो सकता जो सत्त्व की स्वर्णिम जंजीरों का अतिक्रमण कर चुका हो, जो तमस, राजस और सात्त्विक के बन्धनों से परे हो चुका हो और उस अनन्त में, जिसे वेद बृहत् कहते हैं, प्रवेश कर चुका हो। वह उन धर्मों से ऊपर उठने में सक्षम हो जाता है जो तमस, रजस् और सत्त्व द्वारा प्राप्त होने वाले निम्नस्तरीय विकास के लिए उपयुक्त होते हैं। वह अहं की सीमाओं से मुक्त हो जाता है और सर्वोच्च सत्ता के समक्ष सम्पूर्ण समर्पण में सक्षम हो जाता है और परमसत्य के बोध की इस स्थिति में वह उचित कर्म करने (ऋत) में समर्थ होता है।

ऋत और धर्म की अवधारणा की इस पृष्ठभूमि में हम भारतीय-धर्मशास्त्र के उस समूचे इतिहास को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं जहाँ सामाजिक नियमों के अनुसरण का आग्रह तो है फिर भी उनके प्रयोग बहुविध और नवनीय थे तथा धर्म के सभी प्रतिबन्धों, सभी अच्छाइयों, बुराइयों से परे उठ जाने के उपदेश की प्रवृत्ति बीच-बीच में झाँकती रहती है। इसके पश्चात् हम निरुक्ति पर विचार करते हैं। वेद के कठिन शब्दों के सङ्ग्रह निघण्टु पर एक तरह का भाष्य निरुक्त है। निघण्टु के रचनाकार प्रजापति कश्यप माने जाते हैं। निघण्टु के प्रथम दो अध्यायों में उन शब्दों का सङ्ग्रह है जिनका एक अर्थ है, चतुर्थ अध्याय में उन शब्दों का सङ्ग्रह है जो अनेकार्थक हैं। पञ्चम अध्याय में वैदिक देवताओं के नाम सङ्कलित हैं। निघण्टु पर कई टीकायें हुई हैं किन्तु यास्क की टीका को वेदाङ्ग की प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। यह वेदाङ्ग निरुक्त कहा गया है। निरुक्त केवल शब्दार्थ तक ही सीमित नहीं है, इसमें शब्दों के मूल तथा उन मूलों से व्युत्पन्न होने वाले अनेक पर्यायवाची तथा विलोम शब्दों का भी निर्देश किया गया है। सभी सङ्ज्ञा शब्द क्रियाओं से उत्पन्न हुए हैं, यह निरुक्त का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है और आधुनिक-भाषाशास्त्री भी इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यास्क १० वीं से ८ वीं शताब्दी ईसापूर्व किसी समय पैदा हुए थे। यास्क के पूर्व भी वैदिक व्याख्या की कई विधियाँ और पद्धतियाँ थीं जैसे आधिदैवत, अध्यात्म, आख्यानसमय, ऐतिहासिक, नैदान, परिव्राजक, याज्ञिक इत्यादि। यास्क के समय तक आते-आते बहुत से शब्दों के मूल अर्थ दुर्बोध हो

चले थे और उन्होंने ऐसे अनेक शब्दों का उल्लेख किया है जिनका अर्थ अनिश्चित था।

कौत्स द्वारा प्रतिपादित एक मत के अनुसार वेद का कोई अर्थ नहीं है। यास्क ने इसका विरोध किया और कहा; -

‘स्थाणुरयं भारहरः किलाभूदधीत्य वेदान् न विजानाति योऽर्थम्।

योऽर्थज्ञ इत सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।’

इस प्रकार उन्होंने उन लोगों की, जो वेद का अर्थ नहीं जानते, तुलना वेद के पारवाहकों से की है। उनके अनुसार जिसे वेद के अर्थ का ज्ञान प्राप्त हो जाता है वह पापमुक्त होकर स्वर्ग की ओर अग्रसर होता है।

निरुक्त पर अनेक टीकायें हुई हैं जैसे दुर्गाचार्य, स्कन्दमाहेश्वर और वररुचिकृत टीकायें।

निरुक्त ऐसे अनेक विषयों का निरूपण करता है जो व्याकरण के अति समीप हैं और इसलिए बहुधा निरुक्त को व्याकरण का एक अङ्ग मान लिया जाता है। जो हो, व्याकरण को छह वेदाङ्गों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। व्याकरण को वेदों का मुख कहा जाता है। प्राचीन परम्परानुसार सर्वप्रथम ब्रह्मा ने व्याकरण का प्रवर्तन किया। उनका अनुसरण बृहस्पति, इन्द्र, माहेश्वर आदि वैयाकरणों ने किया। व्याकरण के सर्वप्रसिद्ध कर्त्ता पाणिनि हैं जिन्होंने स्वयं महान् वैयाकरणों के अनेक महान् नामों का उल्लेख किया है। पाणिनि की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम अष्टाध्यायी है जिसमें वैदिक और वैदिकेतर शब्दों का अनेक वैयाकरणों ने पाणिनि का अनुगमन किया है। कुछ लोगों का विश्वास है कि पाणिनि ७वीं शताब्दी ईसापूर्व में हुए जबकि अन्य लोग उनका समय ४थी शताब्दी ईसापूर्व मानते हैं। युधिष्ठिरमीमांसक उनका समय विक्रम संवत् से २९०० वर्ष पूर्व मानते हैं जो महाभारत युद्ध से २०० वर्ष पश्चात् समझा जाता है।

व्याकरण की व्याख्याओं में पतञ्जलि का महाभाष्य सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। यह पाणिनि के व्याकरण पर सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। पतञ्जलि के महाभाष्य की इतनी प्रामाणिकता है कि जहाँ भी सूत्र, वार्त्तिक और महाभाष्य में मतभेद है, वहाँ पतञ्जलि के महाभाष्य का सिद्धान्त ही अन्तिम रूप से स्वीकार्य माना गया है। पश्चिमी-विद्वानों के अनुसार पतञ्जलि ईसापूर्व दूसरी शती में हुए थे।

युधिष्ठिरमीमांसक उनका समय विक्रम पूर्व संवत् २००० से १२०० के बीच मानते हैं।

पाणिनि द्वारा प्रतिपादित व्याकरण के पठन पाठन की पद्धति का स्थान १६वीं शताब्दी में कुछ हद तक का तन्त्रपद्धति लेने लगी थी। इस परम्परा में भट्टोजीदीक्षितकृत सिद्धान्तकौमुदी और नारायणभट्टकृत प्रक्रियासर्वस्व अधिक प्रसिद्ध हैं। दर्शन के क्षेत्र में भी व्याकरण का विकास हुआ और इसका प्रारम्भ भर्तृहरि द्वारा किया गया जो छठी शताब्दी में हुए थे।

छन्दःशास्त्र के पूर्ण ज्ञान की सूचना वैदिक रचना विधान से मिलती है। वैदिक छन्द रचना का प्रथम विवेचन शाङ्खायनश्रौतसूत्र में मिलता है लेकिन महर्षिपिङ्गल का छन्दःशास्त्र अप्रतिम शास्त्रीय ग्रन्थ है। पिङ्गल ने छन्दों का अध्ययन विवेचन अपने ग्रन्थ छन्दःसूत्र के आठ अध्यायों में किया है। इस ग्रन्थ में उन्होंने न केवल वैदिक छन्दों अपितु इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के छन्दों का भी विवरण दिया है। मुख्य वैदिक छन्द सात हैं, इन्हें गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुभ् और जगती के नाम से जाना जाता है। कात्यायन के अनुसार वेद में मन्त्रों की सर्वाधिक सङ्ख्या त्रिष्टुभ् छन्दों की पाई जाती है। इनकी सङ्ख्या ४२५३ है। गायत्री छन्द में २४६७ मन्त्र, जगती में १३५० मन्त्र, अनुष्टुप् में ८५५ मन्त्र, उष्णिक् में ३४१ मन्त्र, पङ्क्ति में ३१२ और बृहती में १८१ मन्त्र हैं। यद्यपि छन्दों की सङ्ख्या बहुत है किन्तु संस्कृतसाहित्य में केवल ११५० छन्द पाये जाते हैं।

पिङ्गलाचार्य से पूर्व छन्दःशास्त्र के कई महान् आचार्य जैसे कौष्टुकी, यास्क, काश्यप और माण्डव्य आदि हो चुके हैं। पिङ्गलाचार्य के छन्दःसूत्र पर भी अनेक टीकायें हुई हैं। वस्तुतः संस्कृतसाहित्य में छन्दःशास्त्र पर ग्रन्थों की सङ्ख्या का उत्तरोत्तर विकास होता गया है।

सङ्गीतशास्त्र का विकास छन्दःशास्त्र का बहुत ऋणी है। यह तो भलीभाँति ज्ञात है कि सामवेद की रचना गाने के लिए ही हुई थी। यद्यपि सामवेद के गाने की पद्धति शास्त्रीय-सङ्गीत के गाने की पद्धति से भिन्न है तथापि सात स्वर षड्, ऋषभ, गान्धार, पञ्चम, धैवत और निषाद का प्रयोग सामवेद में भी उसी प्रकार होता है जैसे शास्त्रीय-सङ्गीत में होता है। सामवेद से सम्बद्ध छान्दोग्योपनिषद् में सामवेद के पाँच प्रकार की प्रस्तुतियों का निर्देश है यथा हिङ्गार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार

और निष्पान। यह ध्यातव्य है कि वैदिकसाहित्य में वीणा सहित अनेक वाद्ययन्त्रों का उल्लेख मिलता है। सामाजिक जीवन में भी सङ्गीत और धार्मिक कृत्यों की घनिष्ठता के कारण अनेक रागों का विकास हुआ। विशेषतः छह ऋतुओं के अनुसार छह रागों का। सङ्गीत की सन्निकटता में नृत्य और नाटक का भी विकास हुआ। सङ्गीत, नृत्य और नाटक से सम्बन्धित संस्कृत रचनाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र की दो संहितायें हैं- द्वादशसाहस्री और शतसाहस्री। भरतमुनि द्वारा प्रवर्तित परम्परा हजार वर्षों से भी अधिक समय तक प्रचलित रही। तेरहवीं शताब्दी में सारङ्गदेव ने अपनी पुस्तक 'सङ्गीतरत्नाकर' में भरतमुनि की प्रामाणिकता स्वीकार की है। इसके उपरान्त भी सङ्गीत, नृत्य और नाटक पर प्रभूत साहित्य उपलब्ध होता है। वस्तुतः सङ्गीत, नृत्य और नाटक को प्रत्येक युग में राजाश्रय प्राप्त होता रहा और उत्तर तथा दक्षिणभारत के कई सम्राट् स्वयं महान् सङ्गीतज्ञ थे।

शिक्षा, छन्द और व्याकरण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित साहित्य प्रातिशाख्य के नाम से ख्यात है। प्रत्येक वेद और शाखा से सम्बन्धित कुछ निश्चित नाम हैं। ये नियम उच्चारण, छन्द, व्याकरण और अन्य अनेक विविध विषयों से सम्बन्धित हैं। प्रातिशाख्य में वेद का अर्थ भी सङ्केतित है। इसलिए यह सम्बन्धित वेद के अध्ययन में सहायक माना जाता है। ऋक्- प्रातिशाख्य ऋग्वेद की शाकलशाखा की शैशीरीय उपशाखा का विवेचन करता है। इसके कर्त्ता महर्षिशौनक हैं। महान् भाष्यकार उवट ने इस प्रातिशाख्य का भाष्य लिखा है। ऐसा माना जाता है कि ऋक्-प्रातिशाख्य की रचना ईसापूर्व ५वीं - ६ठीं शताब्दी के बीच हुई।

वाजसनेयी-प्रातिशाख्य की रचना कात्यायन ने की जो पाणिनि से पूर्व हुए थे। कात्यायन के प्रातिशाख्य की व्याख्या के लिए उवट और नन्तभट्ट ने क्रमशः मातृवेद और पदार्थीप्रकाशक की रचना की। तैत्तिरीयप्रातिशाख्य का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता से है। इस पर माहिषेय ने टीका की है जिसे 'पदक्रमसदन' के नाम से जाना जाता है।

पुष्पसूत्र और अक्-तन्त्र नामक दो प्रातिशाख्य सामवेद के हैं। पुष्पसूत्र के कर्त्ता वररुचि और ऋक्तन्त्र ९ को शाकटायन माने जाते हैं।

अथर्ववेद का प्राचीनतम प्रातिशाख्य चतुराध्यायिका है, कौत्स को इस प्रातिशाख्य का कर्त्ता कहा जाता है जो कौत्सव्याकरण के नाम से भी जाना जाता है।

छठा वेदाङ्ग ज्योतिष है जो खगोलशास्त्र और गणितज्योतिष से सम्बन्धित है। ज्योतिष को प्रकाश का विज्ञान माना जाता है और इसे वेदाङ्गों में नेत्र की सज्जा दी जाती है। वैदिक प्रज्ञा ने ब्रह्माण्डीय गति में एक आन्तरिक लय की खोज की थी और यह लय मानव जीवन की ऋतुओं और कालक्रमिक-विकास के अनुकूल प्रतीत होती है। काल की कल्पना क्रिया की ऐसी निरन्तरता के रूप में की गई जो मनुष्य की इच्छाओं के स्फुरण, विकास और पूर्ति का मापक है चूंकि मानव की मनोकामनायें और यज्ञ एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े थे इसलिए यज्ञ के प्रारम्भ और पूर्णाहुति के मुहूर्त्त का निर्धारण बड़ा महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। परिणामतः नक्षत्रों का परिवर्तन, दिन और रात्रि की गणना तथा विभिन्न ऋतुओं, राशियों की गणना पर बहुत ध्यान दिया जाता था। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों, राशियों, राहु केतु और अन्य आकाशीय नक्षत्रों के आवर्तन-विवर्तन आदि का वर्णन किया जाता है। ग्रहनक्षत्रों की गतिविधि के अनुसार ही मानव-जीवन के शुभ-अशुभ परिणामों की भविष्यवाणी की जाती है, यह खगोलशास्त्र पर आधारित है।

लगधाचार्य को ऋग्वेदज्योतिष-वेदाङ्ग का कर्त्ता माना जाता है। इसमें ३६ छन्द हैं। यजुर्वेद और अथर्ववेद से सम्बन्धित ज्योतिष वेदाङ्ग हैं। यजुर्वेदज्योतिष में ३४ छन्द हैं और इसके कर्त्ता श्रीशाचार्य हैं। अथर्ववेदज्योतिष में १४ अध्याय और १०२ छन्द हैं। यह वक्ता पितामह और श्रोता काश्यप का संवाद माना जाता है।

भारत के महान्तम खगोलशास्त्री और गणितज्योतिष के ज्ञाताओं में वराहमिहिर का नाम विख्यात है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक पञ्चसिद्धान्तिका में ज्योतिष की पाँच पद्धतियों का उल्लेख मिलता है जो अधोलिखित हैं- पितामहसिद्धान्त, वशिष्ठसिद्धान्त, रोमकसिद्धान्त, पौलिस-सिद्धान्त और सूर्य-सिद्धान्त। कालान्तर में ज्योतिष ने अनेक विज्ञानों गणित, बीजगणित, ज्यामिति, ज्योतिषगणित और खगोलशास्त्र के विकास की प्रेरणा दी। भास्कराचार्य (१२वीं

शती) को मध्ययुग के गणितज्ञों और ज्योतिषज्ञानियों में प्रथम माना जाता है। ज्योतिष आज भी समूचे भारत में प्रचलित है और अब भी यह एक विकासमान विज्ञान है। पञ्चाङ्ग, जो तिथि, वार नक्षत्र, योग और करण का विस्तृत व्यौरा देता है, का प्रयोग अधिकांश भारतीय-परिवारों में बराबर होता है और दैनन्दिन जीवनचर्या में भी प्रायः सामान्य जनों और ज्योतिषियों द्वारा वार्षिक पञ्चाङ्ग का ध्यान रखा जाता है।

इस वेदाङ्ग के अलावा अन्य चार शास्त्र और कलायें हैं जिन्हें उपवेद कहा जाता है। ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद है, सामवेद का गन्धर्ववेद और अथर्ववेद का उपवेद अथर्ववेद है। आयुर्वेद का सम्बन्ध आयु के रहस्य और दीर्घायु के पौष्ण रक्षण और देखरेख की कला या विज्ञान से है। आयुर्वेद के आद्यकर्त्ता धन्वन्तरि माने जाते हैं। उनके अलावा आत्रेय, काश्यप, हारीत, अग्निवेश और भेदामुनि के नाम प्रमुख हैं। इस समय आयुर्वेद की तीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं- चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता और वाग्भट्टसंहिता - इन तीनों का सामूहिक नाम बृहत्तयी है।

धनुर्वेद युद्धकला और अस्त्रशास्त्र से सम्बन्धित अति प्राचीनशास्त्र प्रतीत होता है। रामायण और महाभारत में युद्धों के वर्णन और युद्धशास्त्र या कला पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। धनुर्वेद की अति प्राचीन पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं लेकिन कुछ पुस्तकें ज्ञात हैं उनमें धनुर्विधि, द्रौणविद्या, कोदण्डमण्डन और धनुर्वेदसंहिता प्रमुख हैं। परम्परा के अनुसार धनुर्वेद के प्रारम्भकर्त्ता स्वयं महादेव हैं। द्रोणाचार्य ने यह शास्त्र परशुराम से सीखा और अर्जुन ने इसे द्रोणाचार्य से प्राप्त किया। अर्जुन से यह कला सात्यनि ने सीखी।

गन्धर्ववेद सामवेद से प्राप्त सङ्गीत का शास्त्र है। इस विषय का सङ्क्षिप्त विवेचन छन्द शास्त्र के विवेचन के समय हम पहले ही कर चुके हैं।

अथर्ववेद अथर्ववेद का उपवेद है जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन किया गया है। इसमें स्थापत्य के साथ कई अन्य कलाओं का भी उल्लेख मिलता है। शुकनीति के अनुसार अनेकानेक कलायें हैं किन्तु इनमें ६४ कलायें अधिक महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं। परवर्ती साहित्य में हम पाते हैं कि इन ६४ कलाओं का अर्जन किसी भी सुसंस्कृत महिला के लिये अपेक्षित समझा जाता

था। इनमें पाककला, शरीर में अङ्गरागलेपन मर्दन और दाँत रँगने की निपुणता, सङ्गीत, नृत्य, चित्रकला, हार गूँथना, फर्श पर अल्पना-रचना, शय्या-शृङ्गार, वस्त्राभूषणों की उचित देखभाल तथा प्रयोग सिलाई, बढईगीरी, घरेलू उपकरणों, औजारों की मरम्मत, विभिन्न भाषाओं का पढ़ना, लिखना और समझना, काव्यरचना, नाट्यप्रेक्षण, व्यायाम, अवकाश के क्षणों का उपयोग करते हुए मनोरञ्जन और बच्चों के लिए गुडिया, खिलौने बनाना इत्यादि परिगणित हैं।

अर्थशास्त्र पर सबसे प्रसिद्ध पुस्तक कौटिल्य की है। यह पुस्तक अधिकारिक मानी जाती रही है और इसके पश्चात् लिखी अनेक पुस्तकें इसी पर आधारित हैं। कौटिल्य से पूर्व भीष्म और विदुर के प्रसिद्ध विवेचन भी इस विषय पर उपलब्ध हैं।

वेद को सम्यक् रूप से समझने के लिए न केवल वेदाङ्ग बल्कि इतिहास और पुराणों की भी संस्तुति की गई है। इतिहास की दृष्टि से रामायण, महाभारत और पुराणों को पढ़ा जाता है। लेकिन भारतीय-साहित्य में इतिहास शब्द द्वारा मुख्यतः महाभारत का निर्देश है। महर्षि वाल्मीकिरामायण के रचयिता हैं और महाभारत महर्षिवेदव्यास द्वारा विरचित है। सबसे प्राचीन रचना वेद है फिर भी पुराण को इसलिए पुराण कहा जाता है क्योंकि इसमें अतिप्राचीन ज्ञान को स्थान मिला है। ऐसा कहा जाता है कि पुराणों में वर्णित ज्ञान ब्रह्मा को परब्रह्म से प्राप्त हुआ था। ब्रह्मा ने इसे सनत्कुमार सहित अपने चार मानसपुत्रों को दिया। सनत्कुमार से यह ज्ञान नारद ने प्राप्त किया और उन्होंने यह ज्ञान कृष्णद्वैपायन वेदव्यास को दिया। वेदव्यास ने इस ज्ञान को १८ पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत किया। इन्हीं पुस्तकों को पुराण कहा जाता है।

निम्न सारणी में इन पुराणों का नाम तथा उनमें से प्रत्येक की छन्द सङ्ख्या उनके सामने दी जा रही है।

ब्रह्मपुराण १०००० छन्द, पद्मपुराण ५५००० छन्द, विष्णुपुराण २३०००, शिवपुराण २४००० छन्द, भागवतपुराण १८००० छन्द, नारदपुराण २५००० छन्द, मार्कण्डेयपुराण २५००० छन्द, अग्निपुराण १०५०० छन्द, भविष्यपुराण १४५०० छन्द, ब्रह्मवैवर्तपुराण १८००० छन्द, लिङ्गपुराण ११००० छन्द, वाराहपुराण २४००० छन्द, स्कन्दपुराण ८१००० छन्द, वामनपुराण १०००० छन्द, कूर्मपुराण

१७००० छन्द, मत्स्यपुराण १४००० छन्द, गरुडपुराण १९००० छन्द, ब्रह्माण्डपुराण १२००० छन्द।

नरसिंह, नन्दी, भार्गव आदि की तरह अनेक उपपुराण भी हैं। वेदों का अर्थ साधारण जनता को समझाने के लिए पुराणों की रचना हुई ताकि उनके जीवन में दिव्यज्ञान के प्रति संवेदनशीलता जाग्रत की जा सके और उनमें परमपिता के प्रति भक्ति जागृत की जा सके। पुराणों में संसार का सृजन, विकास और संहार का वर्णन है। अनेक पुराणों में पृथ्वी और इसके भूगोल का विस्तृत वर्णन है और उनमें अनेक पुराकथाओं के अलावा जन्म, मृत्यु और शरीरपात के पश्चात् आत्मा की स्थिति का रहस्यमय ज्ञान वर्णित है। दार्शनिक और योगविषयक प्रश्न तथा उनके उत्तर भी हमें इनमें उपलब्ध होते हैं। सबसे प्रधान बात यह है कि पुराणों में बड़े देवों ब्रह्मा, विष्णु और शिव का वर्णन है। भागवतपुराण भगवान् कृष्ण पर सबसे अनमोल पुस्तक मानी जाती है, यह कृष्णचरित और कृष्णभक्ति पर बेजोड़ रचना है। पुराणों का सम्बन्ध अन्य अनेक देवों और अतीत के ऋषियों से है। पुराणों का महत्त्वपूर्ण अवदान अवतार की अवधारणा और परमप्रभु के विविध अवतारों के वर्णन से है।

पुराण-साहित्य बड़ा विशाल है और इसने भारतीय धार्मिक और आध्यात्मिक मानस पर अमिट छाप छोड़ी है।

भारत में दर्शन की परम्परा अत्यन्त प्राचीनकाल में प्रारम्भिकयुग तक जाती है और वेदों पर आधारित दर्शन की अनेक पद्धतियाँ विकसित हुई हैं। ये पद्धतियाँ हैं - न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा। दर्शन की ये सभी पद्धतियाँ वेद को प्रमाण और आधिकारिक मानती हैं। यद्यपि इनमें परस्पर मतपार्थक्य है किन्तु इनमें समन्वय का प्रयत्न किया गया है। इन पद्धतियों पर लिखा साहित्य सूत्रों में मिलता है जिनके कर्त्ता महान् दार्शनिक गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनी और बादरायण माने जाते हैं और इन पर प्रभूत परिमाण में टीकायें उपलब्ध हैं। दर्शन की इन पद्धतियों पर व्याख्या और भाष्य वास्तव में आधुनिककाल में भी लगातार हो रहे हैं।

Vedic Literature: A Brief Overview

I

The antiquity of the Veda has been a subject of discussion and dispute. According to the ancient Indian tradition it is impossible to determine the period of the composition of the Veda. It is, however, universally acknowledged by historians that the Veda is the earliest available collection of the most ancient body of knowledge. According to one Indian historian, Shri Avinash Chandra Das, the Veda could have been composed any time between 250 and 750 BC. According to Lokamanya Tilak, the estimated period would be any time between the forty-fifth and fiftieth centuries BC. This coincides with the view of Professor Haug, Professor Ludwig and Professor Jacobi. Professor Whitney places this period and time between the fifteenth and twentieth centuries BC, while Professor Weber places it any time between the twelfth and fifteenth centuries BC. Professor Max Muller believes that the Veda was composed during the thirteenth century BC.

According to the Bṛhadāraṇyakopaniṣad, all the four Vedas, the Ṛg-veda, Yajur-Veda, Sama-Veda and Atharva Veda are the breath of the Supreme Lord.

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो
यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।

According to Manu Smṛti, the entire Veda is luminous with knowledge (सर्वज्ञानमयो हि सः). It is believed that in its original condition the Veda was one, and it was Rishi Vyāsa who divided it into four parts. For this reason, Rishi Vyāsa is known as Vedavyāsa. The four Vedas have been divided in many ways under the categories of mandala, ashtaka, varga,

sukta, anuvāk, khānda, prashna, chhanda etc. Every word of the poetic and prose composition of the Veda has been counted and fixed. The entire collection of mantras is called 'Saṃhitā'. According to one view, the word Veda is applicable to both the collection of mantras (inevitable expression of poetic inspiration and revelation) and the Brāhmaṇas. The Brāhmaṇas are supposed to be a detailed analysis and commentary on the collection of mantras. The Brāhmaṇas again are divided into three parts: (i) Brāhmaṇas, (ii) Āraṇyakas and (iii) Upaniṣads. In the Brāhmaṇas, there is a detailed statement and explanation of various kinds of sacrifices and their ceremonies and rituals. The Āraṇyakas are much more esoteric and the Upaniṣads expound the knowledge contained in the Vedas. The Upaniṣads are also called Vedānta. At a later period, Rishi Bādarāyaṇa Vyāsa composed the Brahma-sūtra or Sarirak-sūtra in order to present the Upaniṣads in an organized form. At a still later period, the Bhagavadgītā was composed as a part of the great Mahābhārata and it is considered to be the quintessence of the Upaniṣads. The Upaniṣad, Brahma-sūtra and Bhagavadgītā are collectively Prasthanatrayī.

Vedic literature mainly consists of Mantra Samhita, Brahmanas, Aranyakas and Upanisads. In understanding the Mantra Samhita, the study of Brahmanas, Aranyakas and Upanisads is considered to be essential, and the study of the Brahma-sutra and Bhagavadgita is also considered to be necessary. Vedic literature also includes six additional works which are supposed to be aids in understanding the Veda. They are: (i) siksa, (ii) kalpa, (iii) vyakarana, (iv) nirukta, (v) chhanda and (vi) jyotisa. Each one of them is called Vedanga.

Connected with the rituals and ceremonies of Vedic sacrifices (Vedic karmakanda), is the Vedanga known as Kalpa. The Kalpa Vedanga is in the form of a sutra, and it is

thus aphoristic in character. The totality of the Kalpa Vedanga and its literature is three-fold, consisting of the Srauta-sutra, Grhya-sutra and Dharma-sutra. For each Veda there are separate systems of Srauta-sutra, Grhya-sutra and Dharma-sutra. Some of the famous Srauta-sutras are Sankhayana, Asvalayan, Arsheya, Apastamba, Baudhayana, and Katyayana. Among the Grhya-sutras are included Sankhayana, Hiranyakesi, Apastamba, Baudhayana, Kathaka, Paraskara, Kausika, etc. Among the Dharmasutras are included Gautama Dharma-sutra, Apastamba Dharma-sutra, Hiranyakesi Dharma-sutra, Baudhayana Dharma-sutra, Vasistha Dharma-sutra.

In addition to these three categories of Kalpa-sutras, there is a fourth category known as Shulba-sutra which is regarded to be the origin of the ancient science of geometry. The three most famous Shulba-sutras are those of Apastamba, Baudhayana and Katyayana. As in the case of Kalpa Vedanga, each of the Vedangas has further subsidiary literature. All this and much more may be regarded to constitute the vast Vedic literature. Itihasa, Puranas and Vedic systems of philosophy also are included as parts of Vedic literature.

II

But, as mentioned above, the core of Vedic literature consists mainly of Mantra Samhita, Brahmanas, Aranyakas and Upanisads.

Among the Vedas, the R̥g-Veda occupies a prominent place. The R̥g-Veda consists of 10 books or mandalas and 1,017 hymns or suktras. The total number of verses in the R̥g-Veda is 10,580. Even the words and letters of the R̥g-Veda have been counted. The number of words in the R̥g-Veda is 1,53,826 and the number of letters is 4,32,000. Some of the great poets who have received the mantras include Vasistha, Viswamitra, Vamadeva, Bharadwaja, Atri, Madhuchhandas.

Six each of the mandalas or books are given to the hymns of a single rishi or family of rishis. Thus the second mandala is devoted chiefly to the suktas of Rishi Gritsamada, the third and the seventh similarly to the great Viswamitra and Vasistha, respectively, the fourth to Vamadeva, the sixth to Bharadwaja. The fifth is occupied by the hymns of the house of Atri. In each of these mandalas the sutras addressed to Agni are first collected together, followed by those of which Indra is the deity; the invocations of other gods, Brhaspati, Surya, the Ribhus, Usa, etc., close the mandalas. The whole book, the ninth, is given to a single god, Soma. The first, eighth and tenth mandalas are a collection of sutras by various rishis, but the hymns of each seer are ordinarily placed together in the order of their deities, Agni leading, Indra following, the other gods succeeding.

We can also see a certain principle of thought development in the arrangement of the Vedic hymns. The opening mandala seems to have been so designed that the general thought of the Veda in its various elements should correctly unroll itself under the cover of the established symbols by the voices of a certain number of rishis almost all of whom rank high as thinkers and sacred singers and some of whom are among the most famous names of the Vedic tradition. It is also significant that the tenth or closing mandala gives us, with an even greater miscellaneity of authors, the last development of the thought of the Veda, and some of the most modern in the language of its sutras. It is here that we find the 'sacrifice of Purusha' and the great 'hymn of the Creation'. It is here also that modern scholars think that they discover the first origins of Vedantic philosophy, the Brahmavada.

Sacrifice was the principal institution and symbol of the Vedic tradition and knowledge. Sacrifice or yajna symbolizes inner submission, consecration and surrender to

higher powers, gods and the Supreme. Outwardly, this submission was translated into an elaborate ritual of collecting sacrificial materials, lighting them in order to kindle the sacrificial fire and offering to that fire articles of various kinds, including clarified butter, grains and other materials. This entire procedure was accompanied by recitation of appropriate mantras or hymns, sung in a prescribed methodical manner, often marked by appropriate hand movements and other gestures or mudras. The esoteric teaching of the Veda included the idea that human life is a journey, looked upon as a journey of sacrifice to be performed with minute care and attention to discipline and self-control by means of which obstacles in the journey can be overcome and many-sided achievements at various levels of existence can be attained. A close connection was conceived between the word, the idea and the reality, and it was supposed that words opened up the gates of ideas and ideas opened up the gates of the realization of reality. It was against this background that the ritual of yajna was perfected in great detail, and apart from the worship, great attention was paid to the performance of sacrifice. The priest who performed the entire procedure of the sacrifice was called Adhvaryu, and the mantras which were used by the Adhvaryu in the performance of yajna constituted the Yajur-Veda. The Yajur-Veda is therefore also called Adhvaiyu-Veda. Yajur-Veda is principally a composition in prose.

According to the Matsyapurana, the Yajur-Veda was the only Veda in the beginning. The same view is repeated in the Vayupurana and Visnupurana. It was Vedavyasa who arranged the four Samhitas according to the requirements of the processes of symbolic sacrifice, and he transmitted the R̥g-Veda to Paila, the Yajur-Veda to Vaishampayana, the Sama-Veda to Jaimini, and the Atharva-Veda to Sumantu. In due course, they transmitted them to their pupils, and

thereafter there developed the tradition of transmission by oral tradition from teacher to pupil. In this fashion, there came about a development of various recensions or sakhas of various Vedas. In the Bhagavata and in several Puranas there is a detailed description of the various sakhas of the Vedas; we have a similar description in Sántiparva (Chapter 342) of the Mahabharata; we also have organized information on the sakhas of the Vedas in Caranavyuha. There are three notable books of the Caranavyuha attributed, respectively, to Shaunaka, Katyayana and Vyasa.

The total number of sakhas is believed to be 1,131, but at present only 10 sakhas remain alive. As far as the Ṛg-Veda is concerned, only one sakha, Shakala sakha, remains alive out of the 21 which existed at one time. There is a claim that Sankhyayana sakha is still known to a few Vedapathis in Uttar Pradesh and Gujarat, but this is not certain. As far as the Yajur-Veda is concerned, Patanjali had declared in his great Vyakarana Mahabhasya that it had 101 sakhas. But today only 5 sakhas are alive. In fact, the Yajur-Veda is classified broadly into Sukla Yajur-Veda and Kṛsna Yajur-Veda. Sukla Yajur-Veda is also known as Vajasaneyi. The Vajasaneyi Samhita has 30 adhyayas or chapters, 303 anuvaks, 1,975 kandikas, 29,625 words, and 88,875 letters. There are two extant sakhas of Sukla or Vajasaneyi Yajur-Veda, namely, Kanva and Madhyandina. The Kṛsna Yajur-Veda has 5 extant sakhas, namely, Apastamba (Taittiriya), Hiranyakesi (Kāpishthala)*, Katha*, Kathaka, and Kalapa or Maitrayani. The Maitrayani Samhita has 4 kandas which are subdivided into prapathakas. In this Samhita, there are 3,144 mantras, of which 1,701 are rks from the Ṛg-Veda. In this Samhita we have mantras and rituals of important sacrifices like Caturmasya, Vajapeya, Aswamedha, Rajasuya, Sautramani, etc. The Taittiriya Samhita has 7 kandas, 44 prapathakas and 681 anuvaks. In this Samhita we have a

description of sacrifices like Rdjasuya, Yajamana, Paurodasha, etc.

Apart from Adhvaryu, there is also an Udgata in a sacrifice, who sings certain specific mantras. The collection of mantras meant for Udgata has been called the Sama-Veda. Both in Caranavyuha and in Patanjali Mahabhashya it is indicated that the Sama-Veda has 1000 sakhas. The Sama-Veda is musical in character, and it contains only those rks which can appropriately be sung. There are 1,549 rks in Sama-Veda, and only 75 of them are independent of the R̥g-Veda. At present, the Sama-Veda has only 3 existing sakhas, namely Kauthuma, Ranayaniya, and Jaiminiya.

The rks are transformed into songs of Sama by appropriate addition of words or stobhas, such as ha, u, ho, i, o, hu, oh, ou, ha, etc.

Apart from 'Hota' connected with the R̥g-Veda, 'Adhvaryu' connected with the Yajur-Veda, 'Udgata' connected with the Sama-Veda, there is a fourth priest called Brahma who is supposed to be a specialist in all the four Vedas, including the Atharva-Veda. The R̥g-Veda, Yajur-Veda and Sama-Veda are collectively called Vedatrayi, and the Atharva-Veda is not included in the Vedatrayi, although it has a significant place in the Karmakanda of the Vedas. The Atharva-Veda is also known as Atharvangirasa. The Atharva-Veda has two kinds of mantras, those relating to the cure of diseases and destruction of wild animals, pisacas and enemies, and those relating to establishment of peace in the family and village as also those relating to health, wealth, protection, and friendship with enemies. The origin of Ayurveda is to be found in the Atharva-Veda.

The Samhita of the Atharva-Veda has 20 kandas which have 34 prapathakas, 111 anuvaks, 739 suktas and 5,849 mantras. About 1,200 mantras are common with those of the

Ṛg-Veda. One-sixth of the Atharva-Veda is in prose style while the rest is poetic.

Patanjali has indicated that the Atharva-Veda has 9 sakhas, but today we have only 2 sakhas, namely, Paippalada and Saunaka.

Apart from the four Vedas and their numerous sakhas, there is a vast literature of Brahmanas. The appendices of the Brahmanas which are partly in prose and partly in poetic form are called Aranyakas. Aranyakas are so called because there was a tradition to study them in forests. Some Upanisads are also included in Aranyakas; hence it is almost impossible to make a definite boundary-line between Aranyakas and Upanisads. Brahmanas contain a detailed analysis of various categories of sacrifices, their rituals and procedures. Brahmanas include collections of history, legends, anecdotes and narration of stories connected with individuals. A synonym of the word 'Brahmanas' is 'Pravachana'. Pravachana means exposition; hence Brahmanas are looked upon as expositions of various aspects of the Vedas. The Brahmana literature seems to have been very vast but a number of Brahmanas have been lost.

Each of the recensions of the Vedas had a separate Brahmana. Brahmanas were instructed simultaneously with the different recensions of the Vedas. The Aitareya Brahmana belongs to the Shakala sakha of the Ṛg-Veda, while the Kaushitaki (Sankhayana) Brahmana is connected with the Sukla Yajur-Veda, and the Taittiriya Brahmana is connected with Bashkala sakha of the Ṛg-Veda. The Satapatha Brahmana is connected with Sukla Yajur-Veda, while Taittiriya Brahmana and Kathaka Brahmana are connected with the Krishna Yajur-Veda. The Sama-Veda has several Brahmanas including Jaiminiya, Arsheya, Mantra, Samavidhana, Devatadhya Vansha, Panchavinsha

Shadavinsha. The Gopatha Brahmana belongs to the Atharva-Veda.

Among the lost Brahmanas, the important ones are Paimgayani Brahmana, Asvalayana Brahmana, Kathava Brahmana, Galav Brahmana, Carak Brahmana, Swetashvatara Brahmana, Kathava Brahmana, Maitrayani Brahmana, Jhabalak Brahmana, Khandikeya Brahmana, Rauraki Brahmana, Shatyayana Brahmana, Talavakra Brahmana, Aruneya Brahmana, Parashara Brahmana, and Kapeya Brahmana.

According to many ancient scholars, the hymns of the four Vedas and their explanations in the Brahmanas both together constitute the Veda. The Brahmanas have been throughout respected as the Vedas themselves. The rituals have been performed considering the Brahmanas as equal to the Vedas. In the nineteenth century, however, Maharshi Dayananda Saraswati expressed the view that the Brahmanas are not the Vedas themselves. According to him, while the Vedas were revealed, the Brahmanas were not, although they were expressed by the seers. He advanced a number of reasons to establish his viewpoint, and they deserve an impartial study. In any case, it has to be stated that the language of the Brahmanas is not similar to that of the Vedic hymns. Some believe that Brahmanas contain an explanation of the Veda and they are couched in the language of Pravachana. They are therefore Vedic, but not the Vedas themselves. There is, however no dispute about the fact that Brahmanas are looked upon as elucidation or interpretations of Veda, and this itself implies the superiority of the Veda as far as the question of authenticity is concerned.

There is no doubt that the Brahmanas were much more close in time to the Vedas than any other Vedic literature; at the same time, it is well known that the Brahmanas concentrated on Karmakanda rather than on Jnanakanda. As

far as Jnanakanda is concerned, we have a vast literature of Aranyakas and Upanisads. Aranyakas and Upanisads are collectively called Vedanta, since they constitute the last part of the fundamental core of Vedic literature.

The main subject dealt with in the Aranyakas is the esoteric meaning of sacrifices, their rituals as also the inner meaning of the conduct related to the system of varnasrama. The Aitareya and Kaushitaki Aranyakas are related to the Ṛg-Veda, the Taittiriya and Sankhayayana Aranyakas are related to the Krsna Yajur-Veda, while Brhadaranyaka is related to Sukla Yajur-Veda. Talavakara Aranyaka belongs to Jaiminiya sakha of Sama-Veda; and in fact this Aratiyaka is Jaiminiya-Brahmanopanisadbrahmana, and this Brahmana contains Aranyaka and Upanisad as well.

The most important Aranyaka is the Aitareya Aranyaka of the Ṛg-Veda. This Aranyaka consists of 18 chapters, and each chapter is divided into a number of khandas. As mentioned earlier, Aranyakas deal with the inner meanings of various sacrifices, observances and rituals.

The spiritual meaning of the Veda is largely to be found in Upanisads. The word Upanisad really means the secret teaching that enters into the ultimate truth. This secret is normally transmitted and received when the disciple sits close to the teacher, and when the consciousness of the teacher and pupil vibrates in harmony, so that even in silence the secret truth can be transmitted and received. Among the Upanisads the following 10 are considered to be most important: Isha, Kena, Katha, Prasna, Mundaka, Mandukya, Taittiriya, Chhandogya, Aitareya, and Brhadaranyaka. Sankaracarya has also referred to 5 other Upanisads in his commentaries, and these 5 also have been given prominence as far as the spiritual knowledge of the ultimate reality is concerned. They are: Swetashvatara, Mahanarayana, Maitrayani, Kautiki, and Nrisimhatapini.

In the Muktopanisad, it is mentioned that the total number of Upanisads is 108, and they are derived from the four Vedas as follows: (i) Ṛg-Veda: 10 Upaniads, (2) Sukla Yajur-Veda: 19 Upanisads, (3) Krcna Yajur-Veda: 32 Upanisads, (4) Sama-Veda: 16 Upanisads, and (5) Atharva Veda: 31 Upanisads. The Muktopanicad also lays down that the process of the realization of Brahman, the ultimate reality, begins with Brahmajijnasa, aspiration to know Brahman, and it continues through the hearing of the Upanisads, reflection on the Upanisads and dwelling on the Upanisads.

Isha, Kena, Katha, Manduka, Swetasvatara and Mahanarayana are poetic compositions and they have great literary merits. The Atharva-Veda has many Upanisads, and among these Upaniads there are some which are even non-Vedic, in the sense that they have connection with the Puranas and Tantra. If the entire Upanisadic literature is taken into account, there are at least 250 Upanisads.

The important Upanisads and their connections with the Vedas may briefly be stated as follows:

Aitareya, Mandukya and Kaushitaki are related to the Ṛg-Veda;

Taittiriya, Katha, and Swetasvatara are connected with the Krsna Yajur-Veda;

Kena and Chhandogya are related to the Sama-Veda; and Prasna and Manduka are related to the Atharva-Veda.

In spite of the fact that the Upanisads are not as remote as the Veda in respect of language and symbolism, they are extremely difficult to understand. The Upanisads should be looked upon as vehicles of illumination and not of instruction; they were composed for seekers who already had a general familiarity with the ideas of Vedic and Vedantic seers and even some personal experience of the

truths on which they were founded. This is why they dispense in their style with expressed transitions of thought and the development of implied or subordinate notions. Very often one single word or sentence reposes on a number of ideas implicit in the text but nowhere set forth explicitly. The reasoning that supports conclusions is often suggested by words but is not expressly conveyed to the intelligence. The reader, or rather the hearer, was supposed to proceed from light to light, confirming his intuition and verifying by his experience, not submitting the ideas to the judgments of logical reason. As a result, the Upanisads demand a good deal of patience, quietude and concentration, if we are to understand them properly. Even then it is difficult to penetrate into the inner meaning of the Upanisads.

There have been numerous commentators, and during the middle ages, there have been sharp differences of opinion even, as to the fundamental principles of the philosophy of the Upanisads. This has given rise to at least five major schools of Upanisadic interpretation. These are: Advaitavada or the Monism of Sankaracarya, Visistadvaita or the Qualified Monism of Ramanujacarya, Vishnu-dhdvaita or the Pure Monism of Vallabhacarya, Dvaitadvaitavada or the Dualism-non- Dualism of Nimbarkacarya, and Dvaitavada or the Dualism of Madhawacarya. The commentaries of these great Acaryas are commentaries on Brahma-sutra which was composed by Badarayana (Vyasa Rishi) in which the secret of the Upanisads was expounded aphoristically. The commentaries of the Acaryas have been further commented upon by their disciples and there have been commentaries on commentaries. The Bhagavadgita is also considered to be an organized exposition of the essence of Upanisadic teaching; but the Bhagavadgita also has been interpreted differently by different Acaryas, and there have been a number of

commentaries on the Bhagavadgita. The commentary literature on the Upanisads, Brahma-sutra, and Bhagavadgita is continuing to develop even in our own times.

III

Vedic literature includes in its comprehensive sense Vedanga literature as well. Vedanga literature began to develop even before the Upanisads. Mundaka Upanisad mentions six Vedangas as follows: (i) Siksa, (ii) Kalpa, (iii) Vyakarana, (iv) Nirukta, (v) Chhanda, and (vi) Jyotisa. Each Vedanga takes up one aspect of the Veda and an attempt is made to explain it.

Siksa is related to sound, letters, pronunciation, the method of teaching and learning of these basic elements. Every Veda has its own peculiar pronunciation of certain letters, and each one of them has its specific modes and speed of recitation. A book called Siksa Sangraha contains a collection of 32 systems of siksa. These systems relate to different sakhas of the four Vedas. The most important among the books relating to siksa is the famous Paniniya Siksa. Another important book is Yajnavalkiya Siksa. In Vasishthi siksa we have a detailed account of the differences between the mantras of the Rg-Veda and YajurVeda. Both Yajnavalkiya Siksa and Vasishthi Siksa are related to the Vajasaneyi Samhita. The other important works are: Katyayani Siksa, Parashari Siksa, Madhyandini Siksa, Keshavi Siksa and Manduki Sika. In Naradiya Siksá, which is related to the Sama-Veda, there is supposed to be the knowledge of the secret of different sounds

The development of Siksa as a Vedanga and as a science demonstrates the profundity and vast scope of research that was undertaken in respect of pronunciation in ancient India. It is because of this Vedanga that the system of Vedic recitation has remained intact right from the ancient times to

the present day. A given sakha is recited in the same way all over the country, and Vedapathis of the same sakha, belonging to different parts of India, pronounced mantras with the same intonation, speed and strength and force and even the same hand movements. If the Vedanga system of pronunciation has remained so uniform in the country and if the tradition has remained so powerful, it is because of the degree of perfection that was achieved in respect of Siksa.

Vedic religion involves complex ritualistic Karmakanda (system of prescribed acts and sacrifices). A detailed understanding of this Karmakanda became necessary in due course of time, and this gave rise to a vast literature of Kalpasutra. Kalpa means that which is understood or justified in respect of sacrifices and other prescribed acts and rituals. Karmakanda is three-fold: Sruta-sutras, which are connected with sacrifices laid down in Sruti or Veda; Grhya-sutras, which are related to various rituals connected with the life of the householder, and various samskâras which are laid down for important occasions of life starting from birth up to death; and Dharma-sutras which are related to social, political and other benevolent duties. The entire Kalpa literature is Sutra literature, since it is composed aphoristically. There is also a fourth category of Kalpa-sutra, which is known as Shulba-sutra, and which is related to the science of geometry- and architecture connected with the construction of sacrificial altars, fire-vessels and other related structures.

Corresponding to each Veda there are various Srautasutras. Sankhyayana and Aswalayana pertain to the RgVeda; Arsheya (or Mashaka), Lahyayana and Drahyayana belong to the Sama-Veda; Apastamba, Hiranyakeshi, Baudhayana, Bharadwaja and Vaikanasa are related to the Taittiriya sakha of the Krsna Yajur-Veda; Manava Srauta Sutra is related to Maitrayani sakha of Krsna Yajur-Veda

(this Sutra is believed to be the basis of the famous Manu Smṛti); Katyayana Srauta-sutra is related to the Sukla Yajur Veda; Vaitana Sutra is related to the Atharva-Veda, and this Sutra is also related to Gopatha Brahmana and Katyayana Srauta-sutra of Yajur-Veda.

The sacrificial priest needs to have appropriate knowledge of all the Srauta-sutras connected with the four Vedas. In some of the sacrifices, as many as 16 priests are required. There are 14 kinds of sacrificial acts, of which 7 are Havir yajna and 7 are Soma yajna. Of the Havir yajna the important sacrifices are those of Darshapoornamasya and Chaturmasya. In Soma yajna the important ritual is that of Agnistoma. Soma Yajnas are of the three kinds, those which are for one day (ekaha), those of twelve days (dwadashaha), and those of many days (anekaha). Agnicayana connected with Soma yajna continues for one complete year.

Grhya-sutras, which come after Srauta-sutras, also belong to different Vedas. Sankhayana Grhya-sutra are related to the Rg-Veda; Gomila and Khadira belong to Sambavya Grhya-sutra, and Aswalayana Grhya-sutra SamaVeda; Apastamba, Hiranyakesi, Baudhdyana, Manava, Kathaka, Bharadwaja and Vaikhanasa belong to Krsna Yajur-Veda, while Paraskara belongs to Sukla Yajur-Veda; Kausika Grhya-sutra belongs to Atharva-Veda.

The various rituals described in Srauta-sutra require three different kinds of Agnikundas (fire-vessels) which are called Garhapatya, Ahavaniya and Daksina, while in the Deva yajna prescribed by Grhya-sutra only one Agnikunda is required.

Among the Dharma-sutras, Gautama Dharma-sutra is related to Sama-Veda, and Apastamba, Hiranyakeshi, and Baudhyayana are related to Krsn Yajur-Veda. But Dharmasutras such as Gautama, Vasistha, Manava,

Vaikhanasa and Visnu are not related to any specific Veda sakha.

The word 'dharma' has been used in various senses in Indian literature. According to Manu Smṛti, dharma is characterised by what is contained in the Veda, in the Smṛti, and in what is involved in the conduct of good and noble people as also what is good for the one's inner soul. In Sanskrit literature, the word 'dharmaśāstra' is largely connected with all the Smṛtis beginning with Manu and Yajñavalkya and which is in conformity with the Vedas. The Dharma literature begins with the Dharma-sūtra of Gautama, Baudhāyana and Apastamba which appear to belong to the seventh to fourth centuries BC. In due course, the Dharma literature flourished extensively and as many as 100 Smṛtis seem to have been composed; some of them are in prose, but many are in poetic form. Among the authors of the Smṛtis, Manu is the foremost, and there have been a large number of commentaries on the Manu Smṛti. Among these commentaries, the prominent ones are those of Medhatithi, Govindaraja, Kullukabhatta, Narayana, Raghavananda, Nandana and Ramachandra.

The subject of dharma has also been dealt with in some detail in the Bhagavadgītā which is the greatest gospel of karmayoga and in which we find the greatest ancient synthesis of karma, jñāna and bhakti. The Bhagavadgītā recognizes an evolutionary system of dharma, by means of which the individual and the society can be helped in their evolutionary and progressive development towards perfection. In the course of this development, there are also important concepts of svadharma and svakarma. And in the culminating chapter of the Gītā, we find Lord Kṛṣṇa asking Arjuna to renounce all dharmas and to surrender to the Supreme Divine.

This vast and complex teaching of the Gita seems to be inherent in the teaching of the Veda, which is also the original synthesis of karma, jnana and bhakti. The master concept of the Veda from which the concept of dharma developed in the later period is that of ritam. Ritam and satyam seem to be interchangeable, but there is a certain distinction between the two in so far as satyam may be regarded to be truth and ritam to be right. In fact, the full formula of perfection as defined in the Veda is satyam, ritam, and brhat. Brhat or the vast is the fundamental perspective of the truth. Where there is limitation, there is partiality and there is imperfection or distortion of truth. It is only in the context of the vast infinitude that truth can be apprehended, comprehended and known, and it is only when truth is known that right action can proceed. This is the significance of the trinity of satyam, ritam and brhat.

If we keep firm on this original meaning of ritam, we can appreciate the entire development of the concept of dharma in Indian literature. Dharma is that which holds us, which gives us cohesion and which keeps us fixed on the progressive path of development and growth. In this context, there cannot be a static dharma, and there cannot be one uniform dharma for all human beings and for all levels of life. What is right for a tamasika (dull) being cannot be right for the rajasika (passionate or dynamic), and what is right for the rajasika cannot be right for the sattwika (pure and luminous). And since sattwika is still not the highest, what is right for the sattwika cannot be binding on the one who transcends even the golden fetters of the sattwa. The one who transcends the chain of tamas, rajas and sattwa and enters into the infinitude, the Brhat of the Veda, he becomes capable of transcending all dharmas which are appropriate to lower developments through tamas, rajas and sattwa. He is liberated from egoistic limitations, he becomes capable of

total surrender to the Supreme, and in a state of comprehension of the truth, satyam, he becomes capable of the right action, ritam.

It is against this background of the concept of ritam and dharma that we can better appreciate the entire history of the Dharmasastra in India where there has been strict insistence on adherence to social law and yet complex and flexible application of it, and even a supervening tendency to preach transcendence of all good and evil and all the binding chains of dharma.

We come next to Nirukta. Nirukta is a kind of commentary on Nighantu which is a collection of difficult words of the Veda. Nighantu is supposed to have been composed by Prajapati Kashyap. In the first two chapters Nighantu provides a collection of those words which have one meaning, and in the fourth chapter, it gives a collection of those words which have several meanings. In the fifth chapter, the names of Vedic gods have been collected. There have been many commentaries on Nighantu, but it is the commentary of Yaska which has found its place as one of the Vedangas, and this Vedanga is known as Nirukta. Nirukta is not confined only to meanings of words; it traces the words to their originals, and it indicates how different similar or dissimilar words arose from those origins. The principle that all names originated from verbs is an important principle of Nirukta, and even modern linguists accept this principle. It is believed that Yaska lived sometime between the tenth and eighth centuries BC. Prior to Yaska also, there were many methods and systems of Vedic interpretation, such as Adhi-daivata, Adhyatma, Akhyana-Samaya, Aitihāsika, Naidana, Parivrajaka, Yajnika, etc. By the time we come to Yaska, the original meanings of many words had become obscure, and he mentions several words where there is no certainty of their meanings.

According to a belief propounded by Kautsa, Vedas have no meaning. Yaska opposed this belief and he said:

स्थानुरय भारहरः किलाभूत् । अधीत्य वेदान् न
विजानाति यो ऽथर्म ।
यो ऽ र्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्रुते । नाकमेति
ज्ञानविधेत्तपाप्मा ॥

He has thus compared him who does not know the meaning of the Veda, to an inert bearer of Veda. According to him, one who attains to the knowledge of meaning becomes free from sin and proceeds towards heaven.

There have been several commentaries on Nirukta such as those of Durgacharya, Skanda Maheshwara and Vararuchi.

Nirukta deals with various subjects which are very close to grammar or vyakarana, and therefore Nirukta is often considered to be a part of vyakarana. However, vyakarana is considered to be a principal part of the six Vedangas. Vyakarana is looked upon as the mouth among the Vedangas. According to the ancient tradition, Brahma was the first to expound vyakarana, and he was followed by grammarians like Brhaspati, Indra, Maheshwara, etc. The most celebrated author of vyakarana is Panini, who has himself mentioned several great names of the great grammarians. Panini's famous book is Ashtadhyayi, in which he has discussed both Vedic and non-Vedic words. There have been numerous grammarians who followed Panini from first century BC up to fourteenth century AD. Some believe that Panini belonged to seventh century BC, while others place him in the fourth century AD. According to Yudhishtira Mimansaka, Panini belonged to 2900 years before the beginning of the Vikram Era, which is supposed to be 200 years after the Mahabharata war.

One of the greatest commentaries on vyakarana is that of Patanjali. This is supposed to be the most authentic book on Panini's Vyakarana. The authenticity of Patanjali's

commentary is so great that wherever there is a difference of opinion between Sutra, Vdrttika and Mahabhashya, the verdict of the Mahabhashya of Patanjali is regarded to be ultimately acceptable. According to Western scholars, Patanjali belonged to second century BC. According to Yudhishtira Mimansaka, Patanjali belonged to 2000 or 1200 years before the Vikram Era.

In sixteenth century AD, the method of the study of grammar propounded by Panini began to be replaced to some extent by the tradition of Katantra. In that tradition, Siddhdnta Kaumudi of Bhattoji Dikshit and Prakriya Sarvasa of Narayana Bhatta are most prominent. Vyakarana developed also in the field of philosophy, and this was initiated by Bhartrihari who belonged to the sixth century AD.

The composition of the Vedas indicates consummate development of the knowledge of the poetic meter, chhandas. The first discussion on Vedic meters is to be found in the Sankhyayana Srauta-sutra. But the classical work on meters is that of Maharshi Pingal. Meters or chhandas have been studied by Pingal in the eighth chapter of his book Chhandah-sutra. In this book, he has taken into account not only Vedic meters but also others. There are mainly seven Vedic meters, namely, Gayatri, Ushnik, Anushtubh, Brhati, Pankti, Trishtubh, and Jagati According to Katyayana, the highest number of mantras in the Rg-Veda are to be found in Trishtubh. This number is 4253. Gayatri has 2467 mantras; Jagati has 1350 mantras; Anushtubh has 855 mantras, Ushnik has 341 mantras; Pankti has 312 mantras, and Brhati has 181 mantras. Although there are numerous meters, we find only 50 meters in the Sanskrit literature.

Prior to Pingalacharya, there were several great teachers of Chhanda Sastra, such as Koshtuki, Yaska, Kashyapa and

Mandavya. There have been several commentaries on the Chhanda-sutra of Pingalacharya. In fact, there has been a continuous development of books on Chhanda Sastra in Sanskrit literature.

The development of musical science also owed a great deal to Chhanda Sastra. It is well known that the Sama-Veda is meant to be sung. Although the method of singing the Sama is different from that of classical music, the seven tunes, namely, shadja, rishabha, gandhara, madhyama, panchama, dhaivata, and nishada are used in Sama in the same way as in classical music. In the Chhandogyopanisad which is based upon the Sama-Veda, five types of musical renderings of the Sama have been indicated, namely, Himkara, Prastava, Udgitha, Pratihara and Nidhan. It is noteworthy that Vedic literature refers also to several musical instruments, including the veena. In social life, too, because of the close connection between religious rites and music, various melodies developed, particularly six melodies corresponding to the six seasons. Closely connected with music was the development of dance and drama. Among the important works in Sanskrit regarding music, dance and drama the most important one is Natya Sastra of Bharat Muni. There are two Samhitas on Natya Sastra, namely, dwadasha sahasri and shat sahasri. The traditions established by Bharat Muni remained prevalent for more than a thousand years, and even in the book Sangeet Ratnakar of Sharangadeva of thirteenth century AD, the authority of Bharat Muni has been acknowledged. Thereafter also there has been a vast literature on music, dance and drama. In fact, music, dance and drama received royal patronage throughout the ages, and some of the great kings of the north and south were themselves great musicians.

Closely connected with Siksa, Chhanda and Vyakarana, there is a body of literature known as Pratisakhya. For each

Veda and for each sakha there are certain specific rules, and these rules deal with various subjects connected with pronunciation, meters and other grammatical matters. The meaning of the Veda is also indicated in the Pratisakhya, and it is therefore considered to be an aid to the study of the concerned Veda. The Ṛk Pratisakhya deals with the Saishiriyā Upasakha of the Sakalā sakha of the Ṛg-Veda. Maharshi Shaunaka is the author. The great commentator Uvat has written a commentary on this Pratisakhya. It is believed that the Ṛk Pratisakhya was composed between fifth and sixth centuries AD.

Vajasaneyi Pratisakhya was composed by Katyayana who belongs to a period earlier than that of Panini. Uvat and Anantabhatta have written, respectively, Matriveda and Padarthiprakashaka to elucidate the Pratisakhya of Katyayana. Taittiriya Pratisakhya is related to the Taittiriya Samhita of the Kṛṣṇa Yajur-Veda. The commentary has been written by Mahishi, which is known as Padakramasādāna.

Pushpasūtra and Riktantra are the two Pratisakhya of the Sama-Veda. The author of Pushpasūtra is supposed to be Vararuchi, and the author of Riktantra is supposed to be Shakatayana.

The Caturadhyāyika is the oldest Pratisakhya, of the Atharva-Veda. Kautsa is supposed to be the author of this Pratisakhya which is also known as Kautsa Vyākaraṇa.

The sixth Vedāṅga relates to jyōtṣā—astronomy and astrology. Jyōtṣā is considered to be the science of light, and it is looked upon as the eyes among the Vedāṅgas. Vedic knowledge had discovered an inner rhythm cosmic movement, and this rhythm seems to correspond with periodic developments and seasons of human life. Time was conceived as a succession of movements that measure growth, development and fulfillment of human aspirations. Since human aspirations and sacrifice were closely

connected with each other, the determination of the time of the beginning and the end of sacrifices assumed great importance. As a result, the transit of planets, calculation of days and nights and the determination of various seasons were closely studied. The science of jyotisa described planets, constellations, comets and also the rotations and revolutions of various luminous objects of the heavens. Corresponding to the movements of planets there were also predictions in regard to fortunate or unfortunate results in human life. This is at the root of astrology.

R̥g-Veda Jyotisa Vedanga has been attributed to Lagadhacharya. It consists of 36 verses. There is also a jyotisa related to the Yajur-Veda and another related to Atharva-Veda. Yajur-Veda Jyotisa consists of 34 verses, and it has been attributed to Shoshacharya. Atharva-Veda Jyotisa has 14 chapters and 102 verses. It is supposed to be a dialogue between Pitamaha who was the speaker and Kashyapa who was the listener.

Among the greatest astronomers and astrologers of India, the most celebrated name is that of Varahamihira. His famous book, Pan cha Siddhantika speaks of five systems of jyotisa: Pitamaha Siddhanta, Vasistha Siddhanta, Romaka Siddhanta, Poulisha Siddhanta, and Surya Siddhanta. In due course, jyotisa inspired the development of various sciences including arithmetic, algebra, geometry, astronomy and astrology. Bhaskaracharya of twelfth century AD is regarded as the first among the mathematicians and astrologers of the middle ages. Jyotisa is even today prevalent all over India, and it is even now a developing science. The Panchanga, which gives detailed information regarding the tithi, vara, nakshatra, yoga and karana, is commonly used in most Indian homes; and the annuals of the Pan changa are constantly consulted by astronomers, astrologers and many individuals in day-to-day life.

Apart from this Vedanga, there are also four other sciences and arts which have come to be known as Upavedas. The Upaveda of the Rg-Veda is Ayurveda, the Upaveda of the Yajur-Veda is Dhanurveda, the Upaveda of the Sama-Veda is Gandharvaveda, and the Upaveda of the Atharva-Veda is Arthaveda. Ayurveda is related to the secret of life and the science and art of sustenance, protection and maintenance of long, life. The originator of Ayurveda is supposed to be Dhanwantari. Apart from him, other prominent names are Aitareya, Kashyapa, Harit, Agnivesha, and Bhedamuni. At present, three important books of Ayurveda are: Chakra Samhita, Sushruta Samhita, and Vagbhatta Samhita. These three books are collectively called Brihat-trayi.

Dhanurveda seems to be a very ancient science dealing with weapons of war and art of warfare. In the Ramayana and Mahabharata a good deal of light is thrown upon this science and art, particularly in the descriptions of battles. The most ancient books of Dhanurveda are not available, but some of the known books are Dhanurvidhi, Drauna Vidya, Kodanda Mandana and Dhanurveda Samhita. According to the tradition, the originator of Dhanurveda is Lord Shankara himself. Parashurama is supposed to have learnt Dhanurveda from Lord Shankara. Dronacharya learnt this science from Parashurama, and Arjuna learnt it from Dronacharya. Sattyaki is supposed to have learnt this science and art from Arjuna.

Gandharvaveda is the science of music, derived from the Sama-Veda, and we have already dealt with this subject briefly, while dealing with the Vedanga of Chhanda.

Arthaveda is the Upaveda of the Atharva-Veda, which deals with social, economic, and political systems. It also deals with architecture and various arts. According to Shukraniti there are a number of arts but 64 are considered

to be more prominent. In later literature we find that 64 arts or kalas were expected to be cultivated by a cultured lady. These included the art of cooking, skill in the use of body ointments and paints for the teeth, etc., music, dancing, painting, garland-making, floor decoration, preparation of the bed, proper use and care of dress and ornaments, sewing, elementary carpentry, repair of household tools and articles, reading, writing and understanding different languages, composing poems, understanding dramas, physical exercises, recreation from utilizing leisure hours, and the art of preparing toys for children.

The most famous book of Arthashastra is that of Kautilya. This book has remained authoritative, and many books which have been written thereafter on Arthashastra rely upon that book. Prior to Kautilya, we have also the famous enunciations of Bhishma and Vidura.

IV

For a proper understanding of the Veda, not only Veangas but also Itihasa and Puranas have been recommended. From the point of view of history (itihasa), the Ramayana, Mahabharata and Puranas are consulted. But in Indian literature the word 'itihasa' refers mainly to Mahabharata. Maharshi Valmiki is the author of the Ramayana and the Mahabharata was composed by Maharshi Vedavyasa. According to the tradition, the word purana is so called because it is supposed to refer to the most ancient knowledge, even though the most ancient composition is that of the Veda. It is said that Brahma had received the knowledge containing the Puranas from the Supreme Divine; Brahma transmitted it to his four mind-born sons, including Sanat Kumara. Narada received this knowledge from Sanat Kumara, and he transmitted it to Krsna Dwaipayana

Vedavyasa. Vedavyasa composed that knowledge in 18 books; each one of them is called a Purana.

The names of these Puranas are given in the following table along with the number of verses mentioned against each.

Name	Number of verses
Brahma Purana	10,000
Padma Purana	55,000
Vishnu Purana	23,000
Shiva Purana	24,000
Bhagavata Purana	18,000
Narada Purana	25,000
Markandeya Purana	25,000
Agni Purana	10,500
Bhavishya Purana	14,500
Brahmavavarta Purana	18,000
Linga Purana	11,000
Varaha Purana	24,000
Skanda Purana	81,000
Vamana Purana	10,000
Koorma Purana	17,000
Matsya Purana	14,000
Garuda Purana	19,000
Brahmanda Purana	12,000

There are also a number of Upapuranas, such as Narasimha, Nandi, Bhargava, etc.

The Puranas have been composed to explain the meanings of Vedas to the common masses of people so as to evoke in them sensitivity in their being towards Divine knowledge and to inspire in them devotion for the Supreme Reality. The Puranas describe the creation of the universe, development of the universe, and the dissolution of the universe. In several Puranas, there is a good deal of description of the earth and its geography, and apart from

many legends, there is also a description of secret knowledge relating to birth, death and the condition of the soul after the death of the body. We also find in them questions and answers dealing with philosophic and yogic matters. Most importantly, the Puranas are related to great deities, particularly Brahma, Vishnu, and Shiva. The Bhagavata Purana is considered to be the most valuable book on Lord Krsna, and it is looked upon as an unparalleled composition on the theme of Shri Krsna and devotion to Shri Krsna. The Puranas are also related to several other deities and great rishis of the past. An important contribution of the Purana is related to the concept of avatara and the description of various avatars of the Supreme Divine.

Purana literature is very vast and it has made a great impact on the religious and spiritual mind of India.

The tradition of philosophy in India goes back to very early times, and based upon the Veda, several systems of philosophy have flourished. These systems are: Nyaya, Vaisheshika, Sankhya, Yoga, Purva Mimamsa and Uttara Mimamsa. All these systems of philosophy accept the authority of the Veda, and although there are differences among them, attempts have also been made to bring about a synthesis of these systems of philosophy. The literature on these systems is to be found in the Sutras attributed to great philosophers such as Gautama, Kanada, Kapila, Patanjali, Jaimini and Badarayana, and in copious commentaries and commentaries on commentaries. In fact, even in the modern period there are expositions and commentaries on these systems of philosophy.